ईश्वरीय दंड

[कहानी संग्रह]

लेखक
पं० विश्वम्भर नाथ शर्मा 'कौशिक'

विनोद पुस्तक मन्दिर,
हास्पिटल रोड, आगरा।

भूमिका

स्वर्गीय पंडित विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' हिन्दी कथा-साहित्य में अपनी अद्भुत वर्णन शक्ति मानवीय संवेदनाओं के सफल चित्रण, जनवादी दृष्टिकोण, सरल, सहज-ग्राह्य भाषा एवं शैली के कारण प्रेमचन्द के समकक्ष ठहरते हैं। समस्त हिन्दी कथा-साहित्य में अकेले 'कौशिक' जो हीं ऐसे कथाकार हैं जो इस क्षेत्र में प्रेमचन्द के सबसे अधिक निकट हैं। 'माँ' और 'भिखारिणी' नामक इनके उपन्यास प्रेमचन्द कालीन उपन्यासों में अत्यन्त आदर की दृष्टि से देखे और पढ़े जाते हैं। इनकी 'ताई' शीर्षक कहानी विभिन्न कहानी-संग्रहों में संग्रहीत होती रही है और उसके बिना कोई भी कहानी-संग्रह पूर्ण नहीं माना जाता है। परन्तु इधर 'कौशिक' जी की ही कहानियों का संग्रह प्रकाश में नहीं आ पाया। उनके कुछ पुराने कहानी-संग्रह अवश्य उपलब्ध हुए हैं परन्तु आज कहीं भी उनकी चर्चा नहीं सुनाई पड़ती। इसी अभाव को दूर करने के लिए विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं की फाइलों में लुप्तप्राय: पड़ी हुई उनकी कहानियों का उद्धार कर यह कहानी-संग्रह हिन्दी के पाठकों की सेवा में प्रस्तुत किया जा रहा है जिससे हमारी पीढ़ी एवं आगे आने वाली पीढ़ी 'कौशिक' जी के महत्व को पहचाने और उनका उचित मूल्यांकन करने का प्रयत्न करे। इसके पश्चात् शीघ्र ही 'कौशिक' जी के दो-तीन कहानी संग्रह और भी प्रकाशित किए जा रहे हैं। विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा के संचालक इस प्रयत्न में हैं कि वे 'कौशिक' की समस्त-साहित्य को उपलब्ध कर उसे प्रकाशित करें।

कहानीकार 'कौशिक' जी की कहानियां प्राय: संक्षिप्त होती हैं। वे एक ही कहानी में देश, समाज, जीवन की विविध समस्याओं को एक

साथ ही सुलझाने का प्रयत्न न कर जीवन के किसी विशिष्ट अँग को अपने कथ्य का विषय बनाते हैं और उनकी सशक्त लेखनी के चमत्कार द्वारा वह विशिष्ट अंग अपने पूर्ण, स्पष्ट एवं मनमोहक रूप में उपस्थित होता है। 'उलझन' से उन्हें विरक्त है; निराशा या अवसाद को वे अपने पात्रों के पास फटकने भी नहीं देते। उनके पात्र अपूर्व उमंग से भरे हुए जीवन-पर्यन्त संघर्षो में लगे रहते हैं। लेखक का मानवतावादी दृष्टिकोण, जिसमें आदर्श का भी गहरा पुट रहता है, पाठक को निरन्तर संघर्षरत रहने की प्रेरणा प्रदान करता रहता है। 'कौशिक' जी के साहित्य का यही महत्व है जो उन्हें अमर बनाने के लिए यथेष्ठ है।

—राजनाथ शर्मा

विषय-सूची

क्र०	पृष्ठ

ईश्वरीय दंड

स्वार्थ

शाम का समय था। रेलवे स्टेशन के थर्ड क्लास बुकिंग आफिस पर बेहद भीड़ थी। भीड़ की अधिकता को रोकने के लिए दो पुलीस कान्स्टेबिल उपस्थित थे। वे बीच-बीच में भीड़ का रेला रोकने के लिए अपने बेतों का प्रयोग भी कर रहे थे। ऐसे ही समय एक तीस-पैंतीस वर्ष का व्यक्ति, जो कपड़े-लत्तों से साधारण स्थिति का व्यक्ति प्रतीत होता था हाथ में एक गठरी लिये टिकट-घर के सामने भीड़ के पीछे आकर खड़ा हो गया। उसके साथ एक स्त्री भी थी, जो धोती पहने और उसके ऊपर चादर ओढ़े थी। स्त्री की वयस २५, २६ वर्ष की थी।

पुरुष भीड़ देखकर स्त्री से बोला—"ऐसे में टिकट लेना बड़ा कठिन है।"

"कितनी भीड़ है—हे भगवान!" स्त्री ने कहा।

पुरुष कुछ क्षण खड़ा सोचता रहा तत्पश्चात बोला—"अच्छा तुम ज़रा गठरी ले लेओ—हम टिकट लेने की तदबीर करें।"

यह कहकर पुरुष ने गठरी स्त्री के हाथ में देदी तत्पश्चात वह भीड़ में घुसा। स्वयं धक्के खाते और दूसरों को धक्के देते वह किसी न किसी प्रकार खिड़की तक पहुँच गया। उसने टिकट बाबू से एक स्टेशन का टिकट माँगा। बाबू ने कहा—"एक रुपया नौ आना—जल्दी !"

पुरुष ने दो रुपये का एक नोट दे दिया। बाबू नोट देखकर बोला—"पैसे नहीं हैं—एक रुपया नौ आना दो।"

"पैसे तो नहीं हैं बाबूजी।"

"तो हटो पीछे—हाँ दूसरा आदमी।"

"बाबू जी हमें टिकट दे दीजिये—बड़ा जरूरी काम है। हमारे पिता मर रहे हैं—पहुँचना जरूरी है।"

"बको मत।"

दूसरा टिकट लेने वाला बोला—"अरे पैसे हों तो निकालो नहीं हटो ! तुम तो खिड़की रोक कर खड़े हो गये। वाह !" वह व्यक्ति दो रुपये का नोट बाबू को देकर बोला—"अच्छा टिकट दे दीजिये—पैसे नहीं हैं तो न सही।" बाबू के मुख पर प्रसन्नता की झलक आकर विलीन होगई। उन्होंने टिकट दे दिया।

पुरुष टिकट लेकर बाहर आया। स्त्री के हाथ से गठरी लेते हुए बोला—"सात आने ज्यादा देने पड़े तब टिकट मिला। बड़ा अन्धेर मचा रक्खा है और कोई नहीं पूछता।"

"भगवान चाहेगा तो इन दाढ़ीजारों को मरते बखत कफन भी न मिलेगा।"

"जब न मिलेगा तब न मिलेगा अभी तो चाँदी काट रहे हैं।"

"कोई बोलता भी नहीं, यह भी कोई बात है !"

"बोल के इनका बना क्या लेगा।" यह कहकर पुरुष चल दिया, स्त्री भी चली। स्त्री बोली—"इन्हें पकड़वा दिया जाय।"

पुरुष हँस कर बोला—"कहना जितना सहज है उतना करना नहीं है।"

"भइया तो कहते थे कि ऐसा करने का सरकारी हुकुम नहीं है, पकड़े जाने पर ऐसे आदमी को सजा हो जाती है।"

"सो तो ठीक है, मगर पकड़वावे कौन?"

"भइया होते तो पकड़वा देते।"

"हाँ तुम्हारे भइया तो जरूर पकड़वा देते। वह होते तो वह भी इन्हीं में मिल जाते। दो पुलीस वाले तयनात तो हैं, क्या अन्धे हैं, देख नही रहे हैं। लेकिन इन्हें भी हिस्सा मिलता है, इससे चुप रहते हैं बल्कि और उलटे टिकट बाबू की मदद करते हैं।"

"हमारे भइया ऐसे नहीं हैं।"

"हाँ तुम्हारे भइया तो बड़े सन्त हैं। पुलीसवालों की बदौलत ही यह अन्धेर चल रहा है। पुलीस चाहे तो एक मिनट में बन्द हो जाय। लेकिन पुलीस का भी तो फायदा होता है, इससे वह भी चुप रहती है। स्त्री ने कोई उत्तर न दिया।

(२)

उपर्युक्त घटना के दो मास पश्चात नगर के एक छोटे से मकान में रात के समय वही पुरुष बैठा भोजन कर रहा है। उसके सामने वही स्त्री बैठी पंखा झल रही है। स्त्री कह रही है—"भइया कल आजायँगे?"

"हाँ कल आयँगे।"

"बड़ा अच्छा हुआ जो भइया की यहाँ बदली हो गई।"

"अच्छा क्या हुआ।" पुरुष पानी का गिलास उठाकर बोला।

"अब इस्टेशन का अन्धेरखाता बन्द हो जायगा।"

पुरुष पानी पीकर गिलास रखते हुए बोला—"तुम न जाने अपने

भइया को क्या समझती हो। तुम्हारे भइया शहर भर के ठेकेदार बन जांयगे क्या।"

"न सहर भर के बन जाँयगे तो जहाँ रहेंगे वहाँ के ठेकेदार तो बन जायँगे।"

"बन गये।"

"बनना पड़ेगा।"

"कौन बनायगा, तुम ?"

"हाँ हम !"

"अच्छा देखेंगे।"

"देख लेना।"

पुरुष मौन हो गया।

दूसरे दिन आठ बजे के लगभग उक्त पुरुष का साला अपने बाल-बच्चों सहित आगया। पुरुष ने द्वार पर ही उसका स्वागत किया। पुरुष को देखकर वह मुस्कराते हुए बोला—"कहो श्यामलाल सब खैर सल्ला।"

"भगवान की दया है। अच्छा हुआ आप यहाँ आगये।"

"हाँ भई, मैंने बड़ी कोशिश की तब आसका।"

"कहाँ तयनाती होगी।"

"अब देखो कहाँ होती है।"

दो घण्टे पश्चात श्यामलाल की पत्नी अपने भाई से बातें कर रही थी—"भइया, यहाँ इस्टेशन पर तो बड़ा अन्धेर है। घर जाते हैं तो बड़ी तकलीफ उठानी पड़ती है।"

भइया लापरवाही से बोला—"सब जगह यही हालत है।"

"उस दिन गये तो ऐसी परेसानी उठाई कि क्या बतावें—रोते नहीं बनता था। उसके पहले गये थे तो सात आने अधिक दिये थे तब टिकट मिला था। भइया उस बाबू को पकड़वाना है, बड़ा तङ्ग करता है।"

"अरे सब ऐसे ही चलता है। वहीं क्या, सब जगह और सब काम में अन्धेर है।"

"इस्टेशन का अन्धेर तो भइया तुम बन्द करवा देओ।"

"देखो हमारी वहाँ तयनाती हो गई तो बन्द हो जायगा।"

"तयनाती करवा लेना।"

"अपने हाथ की बात नहीं है अफसर जहाँ चाहेंगे वहाँ भेजेंगे।"

"तुम कोशिश तो करना।"

"हां सो क्यों नहीं करेंगे।"

"गरीब लोग बड़े दिक होते हैं। उसी दिन एक बुड्ढा फूट-फूट कर रो रहा था। उसके पास एक रुपया था आठ आने का टिकट लेना था, पर बाबू ने पैसे वापस नहीं किए। बेचारे के पास और कुछ नहीं था। उसने पैसे वापस माँगे तो बाबू ने डाट बताई। उसने पुलिस से कहा तो उसने उलटे उसी बेचारे के तीन चार बेंत मारे। ऐसा अन्धेर चल रहा है। हमको बड़ा गुस्सा आया; पर क्या कर सकते थे। उस समय भइया तुम्हारी बड़ी याद आई। हमने सोचा—इस समय भइया होते तो बताते।"

भइया ने सब सुनकर कहा—"ऐसा नहीं करना चाहिए। ऐसा करना जुर्म है। रपोट हो जाय तो बाबू भी फँस जाय और पुलीस-मैन भी।"

"उस बाबू को तो जरूर फँसवाना है भइया। बड़ा हरामजादा है"

"देखो—अब हम आये हैं।"

स्त्री मन ही मन बड़ी प्रसन्न थी कि भइया आगये हैं अब शहर में जितना भी अन्धेर चालू है वह सब बन्द हो जायगा। भइया भये कोतवाल अब डर काहे का।

(३)

साले के आ जाने से श्यामलाल को बड़ी सुविधा हो गई। जिन

आवश्यक वस्तुओं के प्राप्त करने में पहले अनेक कठिनाइयां होती थीं—वे चीजें साले की बदौलत बड़ी आसानी से प्राप्त हो जाती थीं।

श्यामलाल की पत्नी पति से कहती—"देखो भइया के आ जाने से सब ठीक हो गया कि नहीं।"

श्यामलाल को पत्नी की ऐसी बातें; जिनमें उनके साले का गुणगान होता था, बुरी लगती थीं, क्योंकि उन्हें ऐसा आभास मिलता था कि उनकी पत्नी उन्हें अपने भइया की अपेक्षा हकीर समझती है। अतः वह मन ही मन कुढ़ कर रह जाते थे—कोई उत्तर न दे सकते थे।

भइया के आने के दो मास पश्चात एक दिन भइया ने अपनी भगिनी को यह शुभ समाचार सुनाया कि—"कल से हमारी तयनाती रेल के टिकट घर पर हो गई है।"

भगिनी अत्यंत प्रसन्न होकर बोली—"यह बड़ा अच्छा हुआ भइया, अब उस टिकट बाबू को ठीक करना।"

भइया हँसकर बोला—"हाँ अब वह ठीक हो जायगा।"

शाम को स्त्री पति से बोली—"कल से भइया की तयनाती उसी टिकट घर पर हो गई है।"

"अच्छा!"

श्यामलाल बोला—"हाँ उस बाबू को तो जरूर ठीक करवाना है।"

"मैंने जोर देकर कह दिया है।"

"बड़ा अच्छा किया—मैं भी कहूँगा। उस ससुरे ने हमें बहुत दिक किया है। उसको तो फँसवा ही देना चाहिए।"

"भइया जरूर फँसा देंगे।"

"हाँ इतना काम तो उन्हें करना ही पड़ेगा।"

"जरूर करेंगे। मैंने उन्हें सारा हाल बता दिया है।"

उपर्युक्त घटना के पन्द्रह दिन पश्चात श्यामलाल को पुनः घर जाने की आवश्यकता हुई। उस दिन की तरह आज वह पुनः हाथ में गठरी

लिये इक्के से उतरा—साथ में पत्नी भी थी। श्यामलाल का साला ही खड़ा मिल गया। भीड़ आज भी वैसी ही थी। श्यामलाल का साला बोला—"लाओ, टिकट हम ला दें।"

श्यामलाल ने दाम निकाल कर दे दिये। साला दूसरी ओर से टिकट घर के अन्दर घुस गया और पाँच मिनिट में टिकट ले आया। श्याम-लाल को टिकट देकर बोला—"तुम्हें इतनी जल्दी न मिलता।"

"हमें कैसे मिलता, मिलता भी तो दाम अधिक देने पड़ते।"

इसी समय एक व्यक्ति श्यामलाल के साले से बोला—"देखो चीफ साहब, बाबू ने हमारे चार आने ज्यादा ले लिए।"

"कैसे ले लिये?" चीफ साहब ने पूछा।

"बारह आने का टिकट था सो एक रुपया ले लिया, पैसे नहीं लौटाये, हमने माँगे तो डाँट बताई।"

"तो हम क्या करें! तुम लोग घर से रेजगारी लेकर क्यों नहीं चलते।"

"रेजगारी मिलती नहीं। हम क्या करें। हमारे सामने बाबू को कई आदमियों ने रेजगारी दी लेकिन उन्होंने हमें चार आने नहीं दिये।"

"तो हम क्या करें।"

"आपको यह अन्धेर रोकना चाहिए। इसकी रिपोर्ट कीजिए। आपकी ड्यूटी है।"

चीफ साहब सुनते ही आग-बबूला हो गए—उसके दो तीन बेंत मारे और बोले—"तुम साला हमारी ड्यूटी देखने वाला कौन है!"

वह व्यक्ति बदन सहलाता हुआ चल दिया।

श्यामलाल भी चल दिया। रास्ते में पत्नी से बोला—"देखा, तुम्हारे भइया बाबू को ठीक करने को कहते थे सो बाबू ने ही उन्हें ठीक कर लिया।"

पत्नी बोली—"हमें तो टिकट आराम से मिल गया, दुनियाँ से हमें क्या मतलव।"

"ठीक है! यही सब सोचते हैं।" यह कहकर पुरुष ने अट्टहास किया।

———

आत्मग्लानि

सुचितपुर के जमींदार निरंजनसिंह अपने मन्दिर के कुए पर बैठे दतून कर रहे थे। एक व्यक्ति उनके सामने खड़ा था। उससे बातें भी करते जाते थे। उनके पीछे एक व्यक्ति, जो जमींदार साहब का नौकर मालूम होता था पानी का कलसा सामने रक्खे और हाथ में लोटा लिए खड़ा था। वह व्यक्ति जो ठाकुर साहब से बातें कर रहा था, वह कह रहा था—"फुलवारी तो अबकी आपने अच्छी लगवा दी है।" जमींदार साहब कुएं के चारों ओर लगी हुई फुलवारी पर एक दृष्टि डालकर बोले—हाँ इस दफे शहर के जखीमें से पौधे मंगवाये थे। पानी नहीं बरस रहा है नहीं तो अब तक चमन हो जाता।"

—"हाँ पानी की तो इस दफे बड़ी कमी है। यह सम्बत बड़ा खराब बताते हैं। अकाल ही पड़ जायगा क्या"

—"कौन ठिकाना है। सम्बत अठारह सो चौरानवे भी बड़ा खराब रहा था। इससे पण्डित लोग कहते हैं यह सम्बत चौरानवे से भी

खराब रहेगा। पत्रे में भी पानी कम लिखा है।

—"चाहे चौरानवे हो चाहे पंचानवे समय कुछ अच्छा दिखाई नहीं पड़ता। दिन दिन बिगड़ता ही जाता है।"

—"सो तो बिगड़ेगा"। ठाकुर साहब दतून चीरते हुए बोले।

—"पाँच छः बरस से खेती गड़वड़ ही होती चली आरही है। कभी पाला मार गया, कभी हवा-बयार ले गई। कभी कुछ कभी कुछ। यही दशा होती रही है। किसान उबरने नहीं पाता।"

ठाकुर साहब कुल्ली करके अंगोछे से मुंह पोंछते हुये बोले—"भाई जैसी नीयत वैसी बरकत ! जब से किसान की यह नीयत हुई कि जमींदार को पैसा न दो तभी से खेती गड़बड़ होने लगी।"

वह व्यक्ति केवल सिर हिलाकर रह गया। जमींदार साहब की यह बात उसे कुछ जँची नहीं। जमीदार साहब जँचाने के लिए जोर लगाते हुए बोले—"बिचार करके देखो। आखिर पहले सुकाल होता था कि नहीं। किसान सुखी थे—जमींदार को भी पैसा मिलता था, महाजन को भी और सरकार को भी। जब से काँग्रेस की हवा चली और किसानों को यह सिखाया गया कि जमींदार कोई चीज नहीं तभी पैदावार को भी छूत लग गई। इधर किसान की नीयत खराब हुई उधर पैदावार खतम हो गई। भगवान बड़ा न्यायकारी है—उसने कहा जब तुम किसी का न दोगे तो तुम्हें भी न मिलेगा। लेखा-डेवड़ा बराबर ! यह सदा याद रक्खो। आदमी को जो कुछ मिलता है वह खाली उसी के भाग्य से नहीं मिलता। उसमें न जाने कितनों का भाग्य लड़ता है। पहले खेती में जमींदार का भाग्य लड़ता था, महाजन का लड़ता था, किसान का लड़ता था, तब पैदावार होती थी। अब तो किसान चाहते हैं कि खाली हमीं बटोर के घर लें—न जमींदार को दें, न महाजन को, सो कैसे हो सकता है ? उसी का यह नतीजा है कि हरसाल फसल गड़-बड़ हो जाती है।"

—"जमींदार और महाजन अब भी वसूल कर ही लेते हैं।" वह व्यक्ति बोला।"

—"क्या वसूल कर लेते हैं। हमारा हजारों रुपया बाकी पड़ा हुआ है। पहले एक पैसा बाकी नहीं रहता था। खैर हम वसूल कर भी लें पर किसान की नीयत तो बिगड़ गई। फल तो नीयत का मिलता है।"

—"हाँ सो तो हुई है। नीयत तो आजकल दुनियाँ की बिगड़ी हुई है।"

इसी समय एक अठारह-उन्नीस बरस का नवयुवक हाथ में एक गठरी लटकाये उधर से निकला। जमींदार साहब को देखकर उसने प्रणाम किया। जमींदार साहब बोले—"काहे चन्दन शहर से आ रहे हो क्या ? हाँ आज इतवार है—कालिज की छुट्टी है। कल की भी छुट्टी होगी। शहर के क्या हाल-चाल हैं ?" जमींदार साहब को नवयुवक की ओर आकर्षित देखकर वह व्यक्ति वहाँ से धीरे-धीरे आगे बढ़ गया। जमींदार साहब का नौकर भी लोटा और कलसा लेकर चला गया।

नवयुवक बोला—"सब अच्छे हाल-चाल हैं।" थोड़ी देर मौन रह कर युवक पुनः बोला—"आज आज्ञा निकल गई—"नालिश, कुर्की, डिगरी बेदखली सब बन्द कर दी गई।"

ठाकुर साहब के चेहरे का रङ्ग उड़ गया। घबराकर बोले—"अच्छा तो जो सुना था वही हुआ ?"

—"वह तो होता ही। कांग्रेसी सरकार का जमाना है।"

—"काँग्रेस तो सब चौपट करके मानेगी। तुमने यह खबर कहाँ सुनी ?"

—"अखबार में निकली है। स्टेशन पर अखबार लिया था—उस में छपा है। यह देखिये !" इतना कहकर युवक ने जेब से एक दैनिक समाचार पत्र की प्रति निकाल कर दी।

ठाकुर साहब पत्र खोलते हुए बोले—"हमारे यहाँ तो साप्ताहिक

आता है; सो परसों आवेगा। तुमने अच्छा किया जो इसे लेते आये। वह खबर कहाँ है ?"

—"पहले ही पृष्ठ पर है।"

ठाकुर साहब समाचार पढ़कर बोले-"हाँ, सब बन्द होगई। खैर-"

युवक ने पूछा—"अखबार रखियेगा ?"

—"हां पढ़के भिजवा देंगे।"

युवक प्रणाम करके आगे बढ़ा। सहसा ठाकुर साहब बोले-"चन्दा बेटा जरा सुनो ?"

युवक लौट पड़ा और ठाकुर साहब के पास आकर खड़ा हो गया। ठाकुर साहब बोले "जरा इधर आजाओ एकान्त में!"

इतना कहकर ठाकुर साहब युवक को फुलवारी के भीतर ले गये। वहाँ पहुचकर बोले-"बेटा तुम घर के लड़के हो। तुम पर हमें बड़ा भरोसा है। हम तो तुम्हें अपना लड़का ही समझते हैं-तुम चाहे जो समझते हो।"

युवक शिष्टता पूर्वक बोला-"मैं भी आपको पिता ही के समान मानता हूँ। मेरे योग्य जो सेवा हो सो निस्संकोच कहिये।"

—"बात यह है बेटा कि यदि यह खबर गाँव में फैल जायगी कि कुर्की डिग्री बंद होगई तो हमारा बड़ा नुकसान हो जायेगा, इसलिए अभी तुम इसका ज़िक्र गाँव में किसी से न करना। अपने घर वालों से भी न कहना।"

"परन्तु यह खबर अधिक दिनों तक तो छिपेगी नहीं। गाँव के लोग शहर आते जाते ही रहते हैं। आस पास के गाँवों के भी लोग आते जाते रहते हैं उनसे पता लग जायगा।"

—"अभी दो चार दिन पता नहीं लगेगा। ऐसी खबर तो बहुत दिनों से फैल रही है कि कुर्की-डिगरी सब बन्द होने वाली हैं। उससे कुछ नहीं होगा। अभी दो चार दिन जो यह खबर गाँब वालों को न

लगेगी तो हम बहुत कुछ कर लेंगे। इसलिए बेटा तुम अपने मुँह से न कहना वैसे पता लगे तो लगा करे, समझे? इतनी बात हमारी रख लो, परमात्मा तुम्हें चिरंजीव करे!"

—"अच्छी बात है—मैं किसी से न कहूंगा।"

—"बस हम यहीं चाहते हैं। और यह अखबार तो तुम पढ़ चुके होगे?"

—"हाँ मैं तो पढ़ चुका हूं।"

—"तो इसे हमी रख लेंगे। हमारे काम आवेगा।"

—"हाँ! हाँ! मेरे तो काम का है नहीं।" इतना कहकर युवक चल दिया।

(२)

इधर ठाकुर साहब शीघ्रता-पूर्वक अपने डेरे में, जहाँ वह तहसील वसूल का काम किया करते थे, आ बैठे। उन्होंने गुड़ैतों को बुलवाया। उनके आने पर उनसे कहा—"जाओ! रामचरन अहीर, सुखवा बौरिया, बच्चन महाराज इनको बुला लाओ और उधर से रामाधीन को भेज देना, कहना चलो जल्दी!"

गुड़ैतों के जाने के थोड़ी देर बाद रामाधीन आ गया। उससे ठाकुर साहब बोले—"जरा खाता निकालो! रामाधीन ने सन्दूक खोलकर खाता निकाला। ठाकुर साहब बोले—"रामचरन, सुखवा, बच्चन महाराज की कौन तारीखें हैं?"

रामाधीन ने बताया:—"रामचरन की तारीख में आठ दिन बाकी है, सुखवा की तारीख भी उसी दिन है। बच्चन महाराज का तारीख उनके चार दिन बाद पड़ेगी।"

थोड़ी देर पश्चात गुड़ैत तीनों व्यक्तियों को साथ लिये आ पहुंचे। ठाकुर साहब ने उन लोगों को बिठाया। कुछ देर मौन रहने के पश्चात

ठाकुर साहब बोले–"देखो भाई, तुम लोगों की बेदखली की तारीखें बिलकुल करीब हैं–इन्ही पन्द्रह दिनों के अन्दर तुम सब की तारीखें पड़ेंगी। अब बोलो क्या कहते हो - रुपया दोगे या बेदखल होगे ? सुखवा जरा बातचीत का चर–फर था। वह बोल उठा—"मालिक जैसी आपकी मरजी होगी सो होगा। आप हमारे माँ—बाप हो। आपके जियाये जियेंगे।"

—"जियाने की बात तो यह है कि हमारा रुपया दे दो, बस मजे से जमीन जोतो। हम तुम्हारी जमीन तो छीनना चाहते ही नहीं। अपना रुपया माँगते हैं। तुम जानो हमें भी तो सरकार को देना है। खरीफ की सब मालगुजारी हमने अपने पास से भरी, रबी की मालगुजारी आधी जमा की है आधी बाकी है। सो तुम लोग देओ तो वह भी जमा कर दें। नहीं तो हमें क्या करना है, बेदखल हो जाओगे।"

—"अभी आठ दस दिन हैं-तब तक कुछ इन्तजाम करेंगे।"

—"हमें कल मालगुजारी जमा करनी है। तहसीली से परवाना आगया है। इसलिए आज हमें दे दो तो ठीक है। देना तुम्हें पड़ेगा ही, या फिर बेदखल होना पड़ेगा। इसलिए देना हो तो आज दे दो, हमारा भी काम निकल जाय।"

—"इस बख्त तो मालिक मुस्किल है।"

—"देखो हमें रुपये की जरूरत है। इसलिए अभी दे दो तो हम दस-पाँच रुपये कम ले लेंगे। जो कुछ बकाया रह जाये वह तुम अपना सुभीते से देना। हम तुम्हें रसीद, दे देंगे और तहसीली में दरख्वास्त दे देंगे, हमारा रुपया मिल गया। बस सब झगड़ा मिट जायगा तुम भी परेशानी से बचोगे। तारीख के दिन तहसोली जाओगे-काम का हरज होगा, रुपया-धेली खर्च हो जायगा, दिन भर परेशानी उठाओगे। इससे अच्छा है कि आज हमें रुपये दे दो।"

—"कितना रुपया है मालिक ?" ठाकुर साहब रामाधीन से बोले-

"बताग्रो ! "रामाधीन ने देख कर बताया"-सुखवा पर खर्चा सहित ७२।-) बच्चन महाराज पर खर्चा सहित ५२।=)॥, रामचरन पर खर्च साहित ४३॥।)।

—"सुखवा बोला—"मालिक खर्चा छोड़ देग्रो।"

—"खर्चा कैसे छोड़ दें ? हमने खर्च नहीं किया क्या ?"

—"ग्ररे ग्राप राजा ग्रादमी हैं। ग्रापको दस-बीस रुपये की सरदी-गरमी नहीं है हम गरीब ग्रादमी तो मर जायेंगे।"

—"ग्रच्छा सब तो नहीं, कुछ छोड़ देंगे बस ? ग्रब तो खुश हो ?"

—"कितना छोड़ोगे ?"

"पांच पांच रुपये !"

तीनों व्यक्ति एक दूसरे का मुंह ताकने लगे। ग्राँखों में तीनों ने परस्पर प्रश्न दिया "बोलो क्या इरादा है ?"

ठाकुर साहब ने एक तीर ग्रौर छोड़ा, बोले-"पाँच रुपयेखर्चा छोड़ देंगे ग्रौर दस-पाँच बकाया रख लेंगे-ग्रब इससे ग्रधिक ग्रौर क्या चाहते हो।"

रामाधीन बोल उठा-"देखो मालिक की तुम्हारे ऊपर कितनी परवस्ती (परवरिश) है। बेदखल हुई जमीन तुम्हें लौटाये दे रहे हैं ग्रौर रुपये में कितनी रियायत कर रहे हैं। ग्रब ऐसा मौका न चूकना चाहिए। तहसीली जाग्रोगे वहाँ पूरा रुपया लिया जायगा-एक पाई भी नही छूटेगी, नहीं तो बेदखल हो जाग्रोगे।"

सुखवा विचार करके बोला-"चालिस रुपये लेग्रो तो जमा कर दें कहीं से काढ़-माँग लावें।

—"चालीस ! तुम ग्रन्धेर ही करने लगे।"

—"ग्रन्धेर–बन्धेर कुछ नहीं मालिक ! ग्रब ऐसा ही रक्खो।"

—"ग्रब तुमने देखा न कि ठाकुर को रुपये की जरूरत है तो लगे दबाने ! सो इस हवा में न रहना। तहसीली में तो हमें सब मिलेगा-तब

हम इतनी चोट क्यों खाँय ? अब न मिलेगा दस रोज बाद मिलेगा।"

—"अरे रामराम मालिक ? हम आपको भला क्या दवावेंगे। आपके पैर की जूती हैं, आपकी रोटी खाते हैं। हम तो दया चाहते हैं। आपकी दया होगी तो हम भी पार लग जायेंगे !"

ठाकुर साहब बोले-"अच्छा पचास दे दो हम ले लेंगे। पाँच रुपये खर्चा के छोड़ कर के सत्तरह रुपये कुछ आने जो रहेगें वह तुम कार्तिक की फसल में दे देना।"

सुखवा ने दो-एक बार फिर बिनती की पर ठाकुर साहब नहीं माने। अन्त में सुखवा पचास देने पर राजी हो गया।

ठाकुर साहब बोले-"अच्छा जाओ, लाओ, ओफ ! हां रामचरन, बच्चन महाराज तुम क्या कहते हो ?"

बच्चन महाराज बोले-"तीस रुपये हम दे देंगे।"

—"तीस नहीं पेंतीस ! जाओ तुम भी इन्तजाम करो। तुम बोलो रामचरन ?

—"पचीस रुपये ले लो तो हम भी इन्तजाम करें।"

—"अच्छा तीस रुपये लाओ। जाओ ! तुम लोगों को हम उजाड़ना नहीं चाहते, इसलिए इतनी रियायत कर रहे हैं। लेकिन यह शर्त आज दोपहर तक है। दोपहर बाद फिर हमारी मरजी पर है।"

इसके पश्चात ठाकुर ने अन्य लोगों को बुलवाया। इनमें कुछ ऐसे भी थे जिन पर नालिशें कर रक्खी थीं, लेकिन बेदखली की नौबत नहीं आई थी। सुखवा, बच्चन महाराज तथा रामचरन का उदाहरण सामने रख कर ठा० ने उनको भी सर किया। जो दे सकते थे वे राजी हो गए जो नहीं दे सकते थे वे विवश होकर रह गए। इस प्रकार ठाकुर दिन भर यही करते रहे। स्नान-भोजन तक नहीं किया। संध्या होते होते ठा० ने चार सौ रुपये के लगभग घसीट लिये। बेचारे किसानों के लिए इतना ही बहुत था कि फिलहाल उन्हें दस-बीस रुपये कम देने पड़े।

इसी जाल में फंसकर जो दे सकते थे, उन्होंने जैसे भी बना कर्ज लेकर, गहना गिरबी रख कर, ठा० को रुपया दे दिया। कुछ लोगों ने दूसरे दिन देने का वादा किया।

(३)

परन्तु दूसरे दिन गांव में यह खबर आ गई कि कुर्की-डिगरी सब बंद हो गईं। इस खबर के आते ही गांव में कोहराम मच गया। जो दे चुके थे वे हाय हाय करने लगे। कुछ आदमी मुखिया के पास पहुँचकर बोले-"देखा! ठाकुर साहब ने कैसी दगा की?"

मुखिया बोला-"इसमें दगा की कौन बात है? उनका रुपया था, उन्होंने बसूल किया। तुमने दिया तभी तो लिया। तुम न देते!"

एक व्यक्ति उत्तेजित होकर बोला "जब सरकार ने माफ़ कर दिया तब यह लेने वाले कौन होते हैं। इन्हें कल मालूम हो गया था तभी इतनी फुर्ती की।" दूसरा व्यक्ति बोला, "मैंने इसीलिए कल नहीं दिया, ठाकुर साहब ने बहुत पट्टी पढ़ाई। पर मैं समझ गया कि ठाकुर आज इतनी दया कर रहे हैं इसमें कुछ भेद है। इसीलिए मैं आज संध्या तक देने का वादा करके चला आया था। सो मैं तो भइया बच गया। नहीं ठाकुर ने तो गला काट ही लिया था।" इतना कहकर वह खूब हंसा। उसे हँसते देख एक व्यक्ति बिगड़ उठा,-बोला-"क्यों दांत निपोरते हो? बच गये! इतने आदमियों के गले कट गये सो कुछ नहीं। तुम बच गये तो दुनिया तर गई। बेशरम कहीं का! जान पड़ता है तुम्हें मालूम हो गया था, लेकिन तुमने हम लोगों को नहीं बताया।"

वह व्यक्ति भयभीत होकर बोला, "नहीं भइया, मैं अपने लड़के की कसम खाकर कहता हूँ कि मुझे बिलकुल नहीं मालूम, था। लेकिन सन्देह हो गया था।"

—"तो तुमने हमें क्यों नहीं बताया?"

—"खाली सन्देह था।"

—"तो सन्देह बता देते।"

"ठाकुर के डर के मारे नहीं बोला कि उन्हें खबर लग गई तो कहेंगे लोगों को भड़काता है। भइया यह सारी खराबी सुखवा के कारण हुई। सबसे पहले यही रुपया देने पर राजी हुआ था।"

बच्चन महाराज और रामचरन भी वहीं खड़े थे। वे दोनों बोल उठे—"यह ठीक है। पहले वही ससुरा राजी हुआ था हम दोनों बोले भी नहीं चुपचाप बैठे रहे थे। जब वह राजी हो गया तब हमें भी राजी हो जाना पड़ा।"

—"तो चलो उसे मारे लाठियों के ठीक करें। ससुरे ने लुटवा दिया।"

मुखिया बोले—"अब मारपीट से कोई फायदा नहीं। जो होना था हो चुका। रुपया दे दिया तो कोई बेजा नहीं हुआ, वह तो देना ही पड़ता। अब न देना पड़ता फिर देना पड़ता।"

—"सरकार ने माफी करदी है; आप कहते हैं देना पड़ता।'

"माफी नहीं, मुल्तवी हुई है।"

—"आपके कहने से ! अभी मुल्तवी हुई है लेकिन पीछे माफी हो जावेगी।"

—"खैर ! ऐसा ही सही, परन्तु अब तुम कर ही क्या सकते हो। जाओ चुपचाप घर में बैठो। उपद्रव करोगे तो ठाकुर सबको बँधवा के भिजवा देंगे। यह याद रखना।"

"अच्छी बात है। लेकिन ठाकुर अगली फसल का लगान वसूल करेंगे तब देखेंगे। देखें कैसे वसूल करते हैं।"

—"लोग मुखिया से मिलने के पश्चात् एक स्थान पर एकत्रित हुये। एक व्यक्ति बोला—"यह पता तो लगना चाहिए कि ठाकुर को यह बात कैसे मालूम हुई। वह खुद तो शहर गए नहीं, न उनका कोई आदमी गया। शहर से कल कोई आया भी नहीं।"

एक बोल उठा—"अरे हाँ खूब याद आया। शहर से कल रघुनन्दन-सिंह का लड़का चन्दन आया है। सवेरे की गाड़ी से आया था।"

एक दूसरा व्यक्ति बोल उठा—"हाँ! हाँ! मैं उस समय खड़ा ठाकुर से बातें कर रहा था। मेरे सामने ही तो वह आया। ठाकुर उससे बाते करने लगे तो मैं वहाँ से चल दिया था। एक बेर मैंने मुड़ कर देखा था—चन्दन ने उस समय कोई कागज, अखबार जैसा था, निकाल कर ठाकुर को दिया था।"

—"अरे तो बस उसी ने बताया होगा अब ठीक पता चल गया। चलो उससे पूछें। यह उसी साले ने बिस बोया। और हम लोगों को नहीं बताया।" लोग रघुनन्दनसिंह और चन्दनसिंह की सात पीढ़ी का श्राद्ध करते हुए चले। रघुनन्दनसिंह के द्वार पर सब लोग पहुँचे। रघुनन्दनसिंह चौपाल में बैठे हुक्का गुड़गुड़ा रहे थे। भीड़ आती हुई देखकर उठ खड़े हुए। भीड़ में से एक आदमी बोला—"कहीं ठाकुर! तुमने भी हमारे साथ दगा की—गाँव भर का गला कटवा दिया।"

रघुनन्दनसिंह घबरा कर बोला—"क्या हुआ भइया? मैंने तो कुछ नहीं किया।"

एक दूसरा व्यक्ति आगे बढ़कर बोला—"कल जब हम अपने घर का गहना तुम्हारे यहाँ धरने लाये थे और रुपया ले गये थे तब भी तुमने नहीं बताया। जब तुम्हारे लड़के को मालूम था तो तुम्हें भी जरूर ही मालूम हो गया होगा। ऐसी दगाबाजी! वैसे जीने मरने में हम साथी और इस समय जमीदार से मिल गये—क्यों? यह विश्वासघात!"

रघुनन्दनसिंह अकचका कर बोला, "भइया, तुम पन्च परमेसुर हो। तुम लोगों से झूठ नहीं बोलूंगा—भगवान जाने मुझे कुछ नहीं मालूम!

—"अपने उस सपूत को तो बुलाओ कहाँ है! अंग्रेजी पढ़के उसने क्या यही सीखा कि गरीबों के गले कटवा दे।"

—"मैं अभी बुलाता हूँ। मुझे मालूम होता तो मैं भला छिपाता! राम! राम!"

रघुनन्दन सिंह ने चन्दन को आवाज दी। चन्दनसिंह घर के अन्दर था। बाहर आकर उसने पूछा-"क्या है?"

रघुनन्दनसिंह ने पूछा—"कल जब तुम शहर से आये तब तुम्हें मालूम था कि कुर्की डिगरी सब बन्द होगई।"

चन्दन सिंह का मुख श्वेत पड़ गया। वह घबराकर बोला—"नहीं तो क्यों?"

रघुनन्दनसिंह बोला—"ठीक ठीक बताओ, झूठ बोले तो याद रखना जान की खैर नहीं।"

चन्दन रघुनन्दनसिंह के रक्तरंजित नेत्र देखकर घबरा गया। उसने सिर झुका कर कहा—"हां मालूम था।"

—"कैसे मालूम हुआ था?"

इस पर चन्दनसिंह ने सब वृत्तांत सुना दिया। ठाकुर निरंजनसिंह से उसकी जो बातचीत हुई थी वह भी सब बता दी।"

रघुनन्दनसिंह दाँत पीस कर बोले-"तो तूने हमसे भी कपट किया—ऊँ?

—"ठाकुर ने मना कर दिया था कि अपने घर वालों से भी न कहना। मैं वचन दे आया था इसलिए नहीं कहा।"

रघुनन्दनसिंह भीड़ की ओर देख कर बोला—"अब तो आपको विश्वास हुआ कि मैं इस मामले में बिल्कुल निर्दोष हूँ। अब रहा यह नालायक, सो आप लोगों के सामने हाजिर है। इसे ले जाइए और जो चाहे सो कीजिए—मैं कान तक नहीं हिलाऊँगा। कहिए तो मैं अपने हाथ से इसका सिर काट कर आप लोगों को दे दूँ।"

भीड़ में से एक व्यक्ति बोला-"काम तो इसने सिर काट लेने ही का किया, मगर खैर, लड़का है इससे माफ किए देते हैं। अच्छा चलो,

उसी निरंजना को खतम करदें—देखा जायगा ! दो चार फांसी चढ़ जायँगे—बस और क्या होगा।' रघुनन्दनसिंह बोला—"भाइयो, यह सब व्यर्थ की बातें हैं। इससे तुम्हारा रुपया तो वापिस मिल नहीं जायगा-उलटे और मुसीबत में फँस जाओगे ?"

"उसने बड़ी दगा की रघुनन्दन ! हमारा कलेजा जल रहा है।"

—"दगा वगा कुछ नहीं। अपना स्वार्थ संसार देखता है। उसका स्वार्थ था उसने किया। असल में दगा इसने की। इसका कोई स्वार्थ नहीं था। खाली जमीदार को प्रसन्न करने के लिए इसने ऐसा किया। यदि तुम्हें किसी से बदला लेना है तो इस नालायाक से लो। जमीदार का कोई कसूर नहीं। सारा कसूर इसका है। इसने आज कुल को दाग लगा दिया। हट जा मेरे सामने से ! हट जा ! नहीं तो गला घोंट दूँगा।'

इतना कह कर रघुनन्दनसिंह दाँत पीसता हुआ पागल की भाँति चन्दन की ओर बढ़ा। यह देख कर दो-तीन आदमियों ने लपक कर रघुनन्दन को पकड़ लिया, बोले—"जाने दो भइया ! लड़का है। गलती हो गई।" रघुनन्दनसिंह चिल्लाकर करके बोला—"लड़का नहीं एफ० ए० में पढ़ता है। हम-तुम सब से ज्यादा पढ़ा है—फिर भी इसकी यह दशा। इस पढ़े से तो हम बे पढ़े लाख दर्जे भले हैं। अरे मैं ऐसा जानता तो कभी न पढ़ाता। इसने तो आज मेरी नाक काट ली। मुझसे, अपने बाप से कपट किया। कल को जमीदार के कहने से यह मेरा सिर काट लेगा। इसका कोई भरोसा नहीं।" इतना कहकर रघुनन्दन बच्चों की भाँति रोने लगा। चन्दन चुपचाप घर के अन्दर चला गया। लोगों ने समझा-बुझाकर रघुनन्दन को शान्त किया। रोना बन्द करके रघुनन्दन बोला—"यह अंग्रेजी पढ़ के सरकारी आदमी हो गया। अब इसे हम लोगों का माया-मोह नहीं रहा।" लोग रघुनन्दन को समझा-बुझाकर लौटने लगे। सहसा रघुनन्दनसिंह बोला—"ठहर जाओ, भाइयो ? मेरे लड़के के कारण आप लोगों का नुकसान हुआ-यह नुक-

सान मैं दूँगा। बोलो, किसने कितना कितना रुपया दिया है ?"

एक आदमी बोला-"अरे नहीं भइया, तुम क्यों दोगे ? जो होना था हो गया। हम समझेंगे कि देना तो था ही दे दिया। तुम दन्ड क्यों सहो।"

—"नहीं जब तक मैं रुपया नहीं दे दूँगा, मेरी आत्मा को शान्ति नहीं मिलेगी।"

—"सो नहीं होगा ठाकुर ! जैसा तुम्हारा लड़का वैसा हमारा ! हम लोग लाख गरीब हों, पर ऐसा नीच कर्म नहीं कर सकते कि तुमसे दन्ड लें। हम लोग सदा लंगोटी में फाग खेलने वाले आदमी हैं। रोज मरते हैं रोज जीते हैं। हमारा पूरा भगवान के दिये पड़ेगा तुमसे दन्ड लेने से पूरा नहीं पड़ेगा। अब काँग्रेस का राज हुआ है—अब क्या चिन्ता है ? भगवान चाहेगा तो साल छः महीने में हम लोगों का भी उद्धार होगा।"

—"भइया मेरे ऊपर कलंक तो हो गया।"

—"कलंक-वलंक कुछ नहीं ! अब कोई इसका नाम तक नहीं लेगा तुम निश्चित हो कर बैठो।"

—"तो भइया तकलीफ न उठाना-जब कुछ जरूरत हो तो चले आना। मेरे घर में जो कुछ है सब तुम्हीं लोगों का है।"

—"सो तो हमें भरोसा है। तुम्हारी दया से मस्त रहते हैं-चाहे खाने को एकही समय मिले। लड़के को अब कुछ न कहना ठाकुर। हम सुनेंगे तो हमें बड़ा रंज होगा। समझे ! "इतना कहकर उसने आवाज लगाई "बोल महात्मा गांधी की जय।"

\+ \+ \+

दो घण्टे पश्चात रघुनन्दनसिंह के छोटे पुत्र ने जिसकी वयस सात वर्ष की थी, अपने पिता को एक पत्र दिया। पिता ने पूछा—"किसने दी है ?" "बड़े भइया ने" कह कर बालक चला गया।

रघुनन्दनसिंह ने चिट्ठी पढ़ी।

पूज्य पिताजी-चरणों में सादर प्रणाम।

आपकी तथा किसान भाइयों की बातें सुनकर मेरी आँखें खुल गईं। मुझे स्वप्न में भी यह ध्यान नहीं था कि जिसे मैं साधारण बात समझ रहा हूँ वह इतनी गम्भीर निकलेगी! इसमें सन्देह नहीं कि मैंने गरीब किसानों के साथ बहुत बड़ा विश्वासघात किया! जमींदार साहब को बिना सोचे बिचारे मैंने जो बचन दिया था मुझे उसी का ध्यान रहा। परन्तु अब मैं महसूस करता हूँ कि मुझे वैसा बचन देने का कोई अधिकार नहीं था। मेरा पहला कर्तव्य अपने किसान भाइयों के प्रति था! जिन किसान भाइयों के उद्धार के लिए हमारे देश का सहृदय समाज तन मन धन से प्रयत्न कर रहा है, जिन किसान भाइयों के उद्धार पर ही हमारे देश का भविष्य निर्भर है, उन्हीं के साथ मैंने विश्वासघात किया! इससे बढ़कर और कौन पाप हो सकता है। विशेषत: जब कि मैं स्वयम एक किसान ही का पुत्र हूँ और अपने को किसान कहने में गर्व करता हूँ। निश्चय ही मैंने अपने कुल को दाग लगा दिया उसे कलंकित कर दिया। मैं किसान भाइयों को मुँह दिखाने योग्य नहीं रहा। आपके सम्मुख सिर उठाकर चलने योग्य नहीं रहा अतएव इस कलंकित जीवन को धारण किये रहना बेहयाई का जीवन व्यतीत करना है। यदि मैं जीवित रहूँ तो आपके निष्कलंक जीवन पर काले धब्बे के समान रहूँगा, इसलिये मेरा मर जाना ही भला है। पिताजी, आप अपने नालायक पुत्र का अपराध क्षमा करके उसे भूल जाने का प्रयत्न कीजिएगा।

आपका नालायक पुत्र
चन्दनसिंह

रघुनन्दनसिंह पत्र समाप्त करते करते पागलों की भांति दौड़कर चन्दनसिंह के कमरे की ओर गए, कमरे का द्वार भीतर से बन्द था।

"हाय बेटा" कहकर वह बेहोश होगए। घर में कोहराम मच गया। पास पड़ोस के लोग दौड़ पड़े। गाँव का बढ़ई बुलाया गया। उसने आकर किवाड़े चीरे। द्वार खुलने पर लोगों ने देखा—भूमि पर एक मोढ़ा लुढ़का पड़ा है और छत की कड़ी में लगे हुए हुक में चन्दनसिंह की निर्जीव देह लटकी हुई है।

आत्मोत्सर्ग

राजकुमार बोला—"लेकिन सुभद्रा, यह तो सोचो कि तुम्हारे पिता तो एक न एक दिन पकड़ ही लिये जांयगे। उनके दुष्कर्मों का फल उन्हें एक दिन अवश्य ही मिलना है। तुम उनकी कुशलता कब तक मनाओगी? और ऐसे पिता का साथ देना भी तुम्हारे लिए उचित नहीं है।"

सुभद्रा बोली—"कुछ भी हो! वह मेरे पिता हैं। मैं यह मानती हूँ कि उनके सिर पर पापों का भारी बोझ है और एक न एक दिन उन्हें अपने कर्मों का फल भोगना पड़ेगा। परन्तु फिर भी मैं उनका अनिष्ट नहीं चाहती। मुझ मातृहीना को पाँच वर्ष की आयु से उन्होंने पाला है। मेरे लिए उन्होंने न जाने कितने कष्ट सहे और वह मुझे प्राणों से भी अधिक चाहते हैं। यदि मेरे द्वारा उनका अनिष्ट हुआ तो मुझे नरक में भी ठौर न मिलेगी और यदि उनको मेरे विश्वासघात का पता लग गया तो उन्हें कितना दुःख होगा यह तुम स्वयम् सोच सकते हो।"

राजकुमार बोला—"निस्सन्देह समस्या बड़ी विकट है ।"

दोनों कुछ देर तक मौन बैठे रहे, अपने-अपने विचारों में मग्न ! सहसा रामकुमार एक दीर्घ निश्वास छोड़कर बोला–"तो, इसका परिणाम तो यही होगा कि मैं भी तुम्हारे पिता की भाँति बनचर बन जाऊँ, क्योंकि बिना तुम्हारे पिता को लिये मैं घर लौटकर नहीं जा सकता ।"

"क्यों ?" सुभद्रा ने विस्मित होकर पूछा ।

"मैं पिता जी से प्रतिज्ञा करके आया हूँ कि या तो अपने कायर न होने का प्रमाण लाऊँगा या फिर इस जन्म में अपना मुख न दिखाऊँगा ।"

"परन्तु तुम्हारे कायर न होने का प्रमाण—।"

"तुम्हारा पिता है—जीवित या मृत !" राजकुमार बीच ही में बोल उठा ।

"अन्य कोई उपाय नहीं ?"

"कदापि नहीं !"

सुभद्रा ने तुरन्त अपना साफा उठा लिया और उसे बाँधती हुई बोली—"तो मेरी तुम्हारी यह अन्तिम भेंट है । मैं प्राण रहते अपने पिता को तुम्हारे हाथों में न पड़ने दूँगी ।"

राजकुमार घबरा गया । वह दीनभाव से बोला—"परन्तु सुभद्रा मैं तुम्हें प्राणों से अधिक चाहता हूँ और मुझे पूर्ण विश्वास है कि तुम भी मुझसे—।"

सुभद्रा सीधी खड़ी होकर और सिर उठाकर बोली—"हाँ राजकुमार मैं तुमसे प्रेम करती हूँ । अपने पिता के पश्चात यदि मैंने किसी से प्रेम किया है तो वह केवल तुम्ही हो । परन्तु इतना होते हुए भी मैं अपने पिता से विश्वासघात नहीं करूंगी । आज यदि मैं अपने पिता से विश्वासघात करूं तो कल तुमसे भी कर सकती हूँ ।"

"तो इसका अर्थ यही है कि मैं घर लौटकर न जाऊँ ! तुम्हारे

पिता की ही भाँति——।"

सुभद्रा हँसकर बोल उठी—"यह तुमसे नहीं हो सकेगा। तुम वन के कष्टों को नहीं सह सकोगे। मैं जाती हूँ। अब कभी तुम्हारे सामने न पड़ूंगी। तुम मेरे पिता को पकड़ने का प्रयत्न करना।" इतना कहकर सुभद्रा बिजली की भाँति डेरे के बाहर हो गई और तुरन्त अपने घोड़े के पास जा पहुँची। घोड़े को वृक्ष से खोलकर वह फुर्ती से उसकी पीठ पर चढ़ गई। राजकुमार "सुनो तो!" "सुनो तो!" कहता हुआ पीछे दौड़ा; परन्तु जब तक राजकुमार उसके पास पहुँचे तब तक वह घोड़े को एड़ लगाकर हवा हो गई!

❀ ❀ ❀ ❀

एक सप्ताह बीत गया। तृतीय प्रहर का समय था। पंचमसिंह का डेरा एक घने बाग में पड़ा हुआ था। उसके साथ पन्द्रह आदमी थे। पंचमसिंह इस समय अकेला ही किसी विचार में मग्न बैठा था। उसके साथी आराम कर रहे थे। इसी समय एक तम्बू से एक वृद्धा निकली और एक ओर जाने लगी। पंचमसिंह ने उसे बुलाया। उसके पास आने पर उसने पूँछा—"आजकल सुभद्रा कुछ उदास रहती है, तुझे मालूम है कि इसका क्या कारण है?"

वृद्धा बोली—"क्या बताऊँ!"

पंचमसिंह बोला—"जो मालूम हो ठीक-ठीक बताओ।"

वृद्धा सकुचाते हुए बोली—"सुभद्रा ने मना कर दिया है।"

पंचमसिंह आँखें निकाल कर बोला—"कुछ परवा नहीं, तुम कहो!"

वृद्धा बोली—"सुभद्रा हनुमन्तसिंह से प्रेम करती है और वह भी सुभद्रा को खूब चाहता है—दोनों में बड़ा प्यार है।"

पंचमसिंह चौंक पड़ा। वृद्धा कहती गई—"राजकुमार सुभद्रा से

विवाह करना चाहता है।"

बुढ़िया ठिठकी और मुस्कराकर बोली—"हाँ ! परन्तु वह आपको पकड़ने की प्रतिज्ञा करके घर से निकला है। इसी पर दोनों में कुछ झगड़ा हो गया है। सुभद्रा उससे लड़ कर आई है–इसीलिए उदास रहती है।"

"हनुमन्तसिंह मुझे पकड़ने आया है? खूब !" इतना कहकर पंचमसिंह हँसने लगा।

वृद्धा बोली—"एक बात कहती हूँ ठाकुर ! यदि दोनों का ब्याह हो जाय तो इससे बढ़कर और कोई बात नहीं हो सकती। तुम्हारी लड़की को इससे अच्छा बर कहाँ मिलेगा ? दोनों में प्यार भी है—सभी बातें ठीक हैं।"

पंचमसिंह कुछ क्षणों तक मौन बैठा सोचता रहा, तत्पश्चात बोला—"बात तूने पते की कही। दोनों की जोड़ी खूब बनेगी। सुभद्रा रानी बन जायगी, ऐं !"

"हाँ यही तो बात है बड़ा अच्छा अवसर है। तुम्हारी लड़की का तो ब्याह होना ही कठिन है–तुम्हारी लड़की से कौन ब्याह करेगा? यही तो परमात्मा की बड़ी कृपा है जो दोनों का प्यार हो गया है और राजकुमार सुभद्रा से ब्याह करने को तैयार है।"

"लेकिन वह मुझे पकड़ने आया है।"

"हाँ बाप से कहकर आया है कि अब जब पंचमसिंह को पकड़कर लाऊँगा तभी मुँह दिखाऊँगा।"

"क्या ! यदि मुझे न पकड़ सका तो लौटकर घर नहीं जायगा?"

"नहीं। मैंने सुभद्रा से ऐसा ही सुना है।"

पंचमसिंह बोला—"अच्छा जाओ !"

वृद्धा चली गई। पंचमसिंह बड़ी देर तक बैठा सोचता रहा। अन्त को अपने ही आप बोला—"यही ठीक है। ऐसा अवसर नहीं मिलेगा।

सुभद्रा का कल्याण इसी में है !"

(२)

राजकुमार हनुमन्तसिंह डेरे के अन्दर आराम कर रहे थे। इसी समय बाहर कुछ कोलाहल सुनाई पड़ा। राजकुमार घबड़ा कर बाहर निकला, उसने देखा कि पंचमसिंह अकेला अपने घोड़े की लगाम पकड़े खड़ा है और उसके (राजकुमार के) आदमियों से पूछ रहा है कि— "राजकुमार कहाँ है ?" यह देखकर राजकुमार घबरा गया। इसी समय पंचमसिंह की दृष्टि राजकुमार पर पड़ी। वह शीघ्रता से राजकुमार के पास आया। राजकुमार का शरीर कांपने लगा, परन्तु साहस बांधे शांत खड़ा रहा। पंचमसिंह ने पास आकर कहा—"राजकुमार, तुम मुझे पकड़ने आये हो ?"

राजकुमार गम्भीरतापूर्वक बोला—"हाँ ! इरादा तो ऐसा ही है।"

"तो पकड़ लो ! मैं स्वयम् तुम्हारे पास आया हूँ।" राजकुमार चुप खड़ा रहा।

पंचमसिंह बोला—"क्या तुम्हें विश्वास नहीं होता। देखो मेरे पास कोई भी अस्त्र-शस्त्र नहीं है। मैं अपनी इच्छा से गिरफ्तार होने आया हूँ।"

राजकुमार बोला—"यदि ऐसी बात है तो डेरे के अन्दर चलिये।"

पंचमसिंह ने घोड़े की लगाम छोड़ दी। राजकुमार के संकेत करने पर उसके एक आदमी ने घोड़े को अपने अधिकार में कर लिया।

दोनों व्यक्ति डेरे के अन्दर पहुँचे।

पंचमसिंह कुर्सी पर बैठता हुआ बोला—"मैं केवल एक शर्त से गिरफ्तार हो सकता हूँ।"

"कौन सी शर्त ?" राजकुमार ने पूछा।

"वह शर्त यह है कि तुम मेरी लड़की से विवाह करने की प्रतिज्ञा करो।"

राजकुमार का मुख प्रसन्नता से खिल उठा। वह शीघ्रतापूर्वक बोला—"यह तो मैं बिना तुम्हारे कहे ही निश्चय कर चुका हूँ। मैं यदि विवाह करूंगा तो सुभद्रा के साथ, अन्यथा कुंवारा ही रहूँगा।"

"तो बस ठीक है! अब तुम मुझे ले चल सकते हो।"

"परन्तु सुभद्रा कहाँ है।"

"वह मेरे डेरे पर है। वह जब सुनेगी कि मैं गिरफ्तार हो गया हूँ तो स्वयम् आ जायगी।"

(३)

राजकुमार पंचमसिंह को साथ लिये राजधानी की ओर लौट रहे थे। राजधानी थोड़ी ही दूर रह गई थी। इसी समय पीछे से घोड़ों की टापों का शब्द सुनाई पड़ा और धूल उड़ती दिखाई दी। पंचमसिंह बोला—"मेरे साथी आ रहे हैं। परन्तु कोई चिन्ता नहीं। आप लोग चले चलें।

थोड़ी देर में पंचमसिंह के साथी निकट आगये। उनके आगे सुभद्रा थी। सुभद्रा ने चिल्लाकर कहा—"ठहरो! मेरे पिता को कहां लिये जाते हो?"

किसी अन्य के बोलने के पूर्व ही पंचमसिंह बोल उठा—"सुभद्रा! अब कोई फायदा नहीं। मुझे जाने दो—तुम इस मामले में दखल मत दो।"

सुभद्रा बोली—"पिताजी, मैं प्राण रहते आपको नहीं जाने दूंगी।"

पंचमसिंह बोला—"नहीं सुभद्रा! मेरी आज्ञा है कि तुम इसमें बाधा न दो। तुमने सदैव मेरी आज्ञा मानी है, मुझे विश्वास है कि इस आज्ञा को भी मानोगी।"

सुभद्रा क्रन्दन भरे स्वर में बोली—"यह आप क्या कहते हैं पिताजी—आप मौत के मुख में जा रहे हैं।"

"कोई चिंता नहीं! राजकुमार ने मुझसे वादा किया है कि तुम्हारी

रक्षा करेगा।"

"मैं ऐसी रक्षा कदापि नहीं चाहती।"

"सुभद्रा ! मेरी आज्ञा है चुप रहो।"

सुभद्रा ने सिर झुका लिया, उसके नेत्रों में अश्रुधारा बहने लगी।

पंचमसिंह अपने साथियों से बोला—"आप लोग लौट जाँय ! मेरी सलाह यह है कि आप अब लूट-मार का काम छोड़कर अन्य सीधे-सच्चे उपायों द्वारा जीविका चलावें। आयंदा जैसी आप लोगों की इच्छा ? मेरी सम्पत्ति आप लोग आपस में बाँट लेना। अच्छा विदा ? सुभद्रा तुम मेरे साथ चलो।"

इतना कहकर पंचमसिंह ने अपना घोड़ा बढ़ाया। सब लोग उसके पीछे चले। केवल उसके साथी डाकू खड़े देखते रहे—उनमें से अधिकांश की आँखों से आँसू बह रहे थे।

❀ ❀ ❀

कुमार के दोनों कंधों को पकड़कर महाराज बोले—"तुम वीर हो ! तुमने अपनी वीरता का पूरा प्रमाण दे दिया ! आज मुझे बड़ी प्रसन्नता है। मैं तुम्हें इनाम देना चाहता हूँ बोलो क्या चाहते हो ?"

"केवल दो बातें आपसे मागूँगा लेकिन पहले आप प्रतिज्ञा करें कि आप दोनों बातें स्वीकार करेंगे।"

महाराज बोले—"इकट्ठे दो !"

"हाँ ! उनमें से एक भी कम नहीं हो सकती।"

"अच्छा बोलो। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ।"

"एक तो यह कि आप पंचमसिंह को फाँसी न देकर आजन्म कारावास का दण्ड दें।"

"और दूसरी ?" महाराज ने पूछा।

"पंचमसिंह की लड़की से मेरा विवाह कर दें।"

महाराज चौंक पड़े। नेत्र विस्फरित करके उन्होंने कहा—"डाकू की

लड़की से तेरा ब्याह ?"

"पंचमसिंह कुलीन क्षत्री है, वीर है; कुसंग में पड़ जाने से डाकू हो गया अन्यथा यह किस बात में किससे कम है। साथ ही उसके डाकूपन का प्रभाव उसकी कन्या पर कभी नहीं पड़ सकता। उसकी कन्या पूर्णतया निर्दोष है।"

महाराज विचार में पड़ गये। थोड़ी देर तक बेचैनी के साथ टहलते रहने के पश्चात् बोले—"पंचमसिंह निश्चय कुलीन है, परन्तु डाकू तो है।"

"उसकी कन्या तो डाकू नहीं है। यदि उसका पिता डाकू है तो कन्या का क्या दोष ?"

महाराज बोले—"अच्छा जैसी तुम्हारी इच्छा। मैं तो प्रतिज्ञा ही कर चुका हूँ।"

*   *   *

राजकुमार सुभद्रा को हृदय से लगाकर—"पिताजी ने मुझे तुमसे विवाह करने की अनुमति देदी।"

"और पिताजी का क्या होगा ?"

उन्हें फाँसी नहीं दी जायगी—केवल आजन्म कारावास का दण्ड मिलेगा, परन्तु तुम चिन्ता मत करो मैं साल छः महीने पश्चात अनुकूल समय पाकर उनका अपराध क्षमा करवा कर उन्हें मुक्त करवा दूँगा ! सुभद्रा की आँखों में आँसू भर आये, उसने दीर्घ निश्वास छोड़कर कहा—"पिताजी ने मेरे लिये ही अपने को गिरफ्तार कराया ! मेरे कल्याण के लिए उन्होंने मृत्यु की भी परवा नहीं की।"

सुभद्रा के साथ राजकुमार का विवाह हो रहा था। पंचमसिंह कारागार की कोठरी में बाजों की आवाज सुन रहा था। इसी समय कारागार का द्वार खुला और एक सन्तरी भोजन लिए हुये उपस्थित

हुआ। भोजन सामग्री देखकर पंचमसिंह बोला—"ओहो आज तो बड़े माल हैं।"

"हाँ, आज तुम्हारी लड़की के साथ राजकुमार का विवाह हो रहा है।"

पंचमसिंह प्रसन्नता के मारे नाचने लगा। कुछ क्षणों तक नाचने के पश्चात बोला—"सन्तरी! आज मैं भोजन नहीं करूंगा। यह सब ले जाओ! आज मैं उपवास करूंगा, समझे! और महाराज से मेरा सन्देश कहलवा दो कि कन्यादान मेरे ही हाथों से करावें, समझे! कह दोगे न? यदि नहीं कहा तो याद रखना मौका पाते ही मैं तुम्हारा गला घोंट दूंगा, छोड़ूँगा नहीं! इस तरह—

इतना कहकर पंचमसिंह ने सन्तरी का गला पकड़ लिया। सन्तरी डर कर चिल्ला उठा—"मैं कहलवा दूंगा, विश्वास रखो।"

सन्तरी भोजन ले गया। पंचमसिंह चुटकी बजाकर गाने लगा।

पत्रकार

उस दिन एक नवयुवक महाशय अपने राम से मिलने आया। इसने हाल में ही बी० ए० की डिग्री प्राप्त की थी। उसने अपना परिचय दिया।

उसका परिचय प्राप्त करके अपने राम ने पूछा—"आजकल आप क्या करते हैं?"

"अभी तो कुछ नहीं करता। इरादा है कुछ करूं?"

"रुचि किस ओर है?"

"इधर मैंने कुछ कविताएं तथा कहानियाँ लिखीं हैं।"

'हिन्दी का कोई उच्च का ग्रह आया हुआ है, इसमें कोई सन्देह नहीं जान पड़ता।"

"यह आपने कैसे जाना?" उसने मुस्कराकर पूछा।

"आजकल जो युवक कालेज से निकलता है। वह कविता या कहानी लिखता हुआ निकलता है। यह हिन्दी का बड़ा सौभाग्य समझना चाहिये।"

"हाँ ! कविता और कहानी तो मैं थर्ड ईयर से ही लिखने लगा था।"

"इससे आशा होती है कि एक समय वह भी आ सकता है जब कि बच्चे माता के पेट से ही कविता और कहानी लिखते हुए उत्पन्न होंगे।"

"खैर यह तो आपकी अतिशयोक्ति है ऐसा कभी न होगा।"

"न होगा ! यदि ऐसा न हुआ तो कुछ भी न हुआ। तो आप कवि और कहानीकार बनना चाहते हैं—मेरा तात्पर्य है कि आप यह व्यवसाय करना चाहते हैं– कवि और कहानीकार तो आप हुई हैं।"

"मैं पत्रकार बनना चाहता हूँ।"

"तो बस बन गये। आप जैसे पढ़े-लिखे व्यक्ति का तो संकल्प कर लेना-मात्र यथेष्ट है। पत्रकार कला तो केवल संकल्प कर लेने से आ जाती है।"

"तो इसके लिये कोई पत्र भी तो होना चाहिए।'

"क्यों, पत्रकार-कला सीखने के लिए पत्र की क्यों आवश्यकता है ?"

"आप जो लिखेंगे वह किस में प्रकाशित होगा ?"

"कला प्रकाशित हो या न हो, रहेगी तो वह कला ही।"

"कला रहेगी—परन्तु उसका प्रकाशन भी तो होना चाहिये।"

"कोई आवश्यकता नहीं है।"

"यह तो बात कुछ समझ में नहीं आती।"

"यह बताइये, आप कैसा पत्र चाहते हैं ?"

"दैनिक अथवा साप्ताहिक हो।"

"अच्छा मान लीजिए मिल गया—तब उसका क्या कीजिएगा ?"

"उसमें लिखूँगा।"

"क्या लिखिएगा—कहानी अथवा कविता।"

"कहानी, व्यंग, स्केच इत्यादि।"

"तो ये विषय लिखने वाले पत्रकार नहीं समझे जाते।'

"क्यों ?"

"तबियत ! नहीं समझते किसी का इजारा है।"

"कौन नहीं समझता—आप नहीं समझते ?"

"जी हां ! हम और हमारे से जानकार नहीं समझते—कहिये आप क्या कहते हैं ?"

"आप तो लड़ने पर उतारू मालूम होते हैं—जरा शान्त होकर बात कीजिये।"

"जी शांति-वांति का मैं जरा भी कायल नहीं हूं। हम जो कहें उसे चुपचाप मान लीजिए।"

"जर्नलिज्म को आप क्या कहेंगे ?"

"भगवान जाने क्या कहेंगे। आदमी की तबियत कब कैसी होती है, इसका क्या पता ?"

"जर्नलिज्म को पत्रकार कला ही कहेंगे न ?"

"हाँ ! जब और कुछ न कह सकेंगे तो झख मार के यही कहना पड़ेगा।"

"तो जर्नलिज्म के अन्तर्गत तो कहानी लेखन इत्यादि भी आ जाता है।"

"लोगों की आँख बचाकर आ जाता होगा। कभी किसी ने देख लिया तो—।"

"आप समझे नहीं ! मेरा तात्पर्य यह है कि कहानी लेखन, व्यङ्ग लेखन इत्यादि भी पत्रकारकला के अन्तर्गत है।"

"वह विलायती पत्रकार कला के अन्तर्गत होगा हम स्वदेशी की बात कर रहे हैं ?"

"स्वदेशी पत्रकारकला किसे कहते हैं ?"

"किसे नहीं कहते—पत्रकार कला को कहते हैं। उसमें बस इतना है कि समाचारों का सङ्कलन—और वर्तमान समस्याओं पर लेख ! चाहे

अनुवाद हों, भावानुवाद हों अथवा स्वतन्त्र हों।"

"बस इसी का नाम पत्रकारकला है?"

"जी हाँ!"

"तब तो बड़ा सहल नुसखा है।"

"सहल नुसखा है।"

"जी हां यह सब कार्य अंग्रेजी समाचारपत्रों के द्वारा हो सकता है। अनुवाद करने भर की योग्यता होनी चाहिये।"

"अनुवाद करने की योग्यता क्या सब में होती है?"

"जी हां! अनुवाद करने में क्या लगता है?"

"अच्छा 'जम्पड आन हिज फीट' केलिये हिन्दी में क्या लिखियेगा?"

"वाह! बड़ा सुन्दर! अपने पैरों पर कूदना, यह ठेठ हिन्दी मुहावरा है। अपने राम ने कुछ और ही सोचा था।"

"क्या?"

"उछलकर खड़ा हो गया। कूदकर खड़ा हो गया! परन्तु इससे यह पता नहीं चलता कि अपने पैरों पर उछलकर खड़ा हो गया या किसी दूसरे के! अपने पैरों पर कूदना लिखने से मामला साफ हो जाता है।"

"तो यह अनुवाद आपको पसन्द आया?"

"जी बहुत पसन्द आया। एक साप्ताहिक में ऐसा ही अनुवाद हुआ है। अपने राम को वह कुछ खटका था, परन्तु अब आपके समझाने से समझ में आ गया। वाकई आप पूरे पत्रकार हैं। आप अंग्रेजी में भी अच्छा अनुवाद कर लेते होंगे। नामों का अनुवाद नहीं हो—वह भी होना चाहिए।"

"सो तो बड़ा आसान है! बालकृष्ण का अंग्रेजी अनुवाद चाइल्ड-ब्लेक! कृष्णकुमार का ब्लेक बेचलर!"

"खूब! खूब! आप प्रथम श्रेणी के पत्रकार हैं।"

"परन्तु आप तो कहते हैं कि कहानीकार को लोग पत्रकार नहीं मानते !"

"जी हाँ ! ऐसा ही मामला है।"

"तो पत्रकार कला का मतलब 'जर्नलिज्म' न होगा। जर्नलिज्म के अन्तर्गत तो कहानी लेखन है !"

"आप विलायती वस्तु की ओर क्यों दौड़ते हैं !"

"हमारे हिन्दी वाले तो अपनी लगभग प्रत्येक बात के प्रमाण में अंग्रेजी इत्यादि का उदाहरण पेश करते हैं। अमुक साहब ने कला पर यह राय दी है, अमुक लेखक यह कहता है। बड़े-बड़े नामधारी लेखक साहब लोगों का प्रमाण ही सामने रखते हैं। तब जर्नलिज्म ने क्या पाप किया है जो उसकी मिसाल न दी जाय।"

"मान लीजिए किसी ने अज्ञान से कह दिया कि पत्रकार कला के अन्तर्गत केवल इतना ही है तो वह बात पक्की हो गई। अब चाहे किसी भी साहब बहादुर की उक्ति रखिये वह कदापि मान्य न होगी। जो एक बार जबान से निकल गया सो निकल गया। उसे पलटना भले आदमियों का काम नहीं है।"

'हिन्दी में भी विचित्र धांधली है। जो जिसका मन होता है कह डालता है।"

"पत्रकार है इससे कह डालता है। उसे कहने का अधिकार है। और पत्रकार जो बात कह डालता है वह पत्थर की लकीर हो जाती है, उसे कोई मिटा नहीं सकता। भाव का कभी अभाव नहीं होता !"

"हाँ खूब याद आया ! हमारे नगर में सम्पूर्ण राशनिङ्ग होने जा रही है। अब खाने-पीने का सामान केवल राशन की दूकानों से मिलेगा। जो भाव नियत कर दिया जायगा उसी भाव पर मिलेगा।'

"बड़ी अच्छी बात है।"

"इस पर अखबार वालों को लिखना चाहिए। क्या बताऊं मेरे

हाथ में कोई अखबार नहीं अन्यथा मैं अवश्य लिखता।"

"आहा हा हा! अब जाकर ठीक बात सूझी। बस अब पता चल गया।"

"क्या पता चल गया।"

"कि पत्रकार किसे कहते हैं।"

"किसे कहते हैं?"

"जिसके हाथ में कोई अखबार हो।" यह कहकर अपने राम ने एक अखबार उठा लिया और कहा—"देखिये! इस समय यह अखबार मेरे हाथ में है तो मैं पत्रकार हूँ। यह लीजिए! मैंने यह अखबार अलग रख दिया—अब मैं पत्रकार नहीं रहा। हाथ में अखबार होने का यही मतलब है?"

"नहीं साहब! आप तो न जाने कहाँ की बात करने लगे। मेरा तात्पर्य यह है कि किसी अखबार का स्वामी अथवा प्रकाशक या संपादक—ये लोग पत्रकार हैं। क्योंकि इनके पास अखबार है। जब जो चाहे छाप सकते हैं। इसी का नाम है अखबार हाथ में होना।"

"अच्छा यह मतलब है आपका। अपने राम के हाथ में कोई अख-बार नहीं है इस कारण अपने राम तो पत्रकार हैं नहीं।"

"परन्तु फ्री लान्स जर्नलिज्म भी तो होती है। फ्री लान्स जर्नलिज्म किसी अखबार में नहीं होते—वे केवल अखबारों में लेख भेजा करते हैं।"

"यह आप विलायती बात कह रहे हैं। हिन्दी में उसे केवल लेखक कहते हैं, पत्रकार नहीं कहते!"

"लेखक पत्रकार नहीं होते?"

"खाली लेखक पत्रकार कैसे हो सकता है? लेखक तो केवल लेख लिखकर भेज देगा—तो केवल इतना कर देने से वह पत्रकार कैसे हो जायगा। लेख को छपवाना, प्रूफ देखना, उसे प्रकाशित करना—यह

सब काम तो पत्रकार ही पर पड़ता है।"

"यह काम तो यदि अवसर पड़े तो लेखक भी कर सकता है।"

"ओहो ! लेखक तो स्वर्ग में सीढ़ी लगा सकता है। परन्तु लगाने पावे तब तो ! बेचारे को सीढ़ी ही न मिलेगी तब क्या लगावेगा ? पहले उसे सीढ़ी बरदार बनना चाहिए। इसी प्रकार पहिले लेखक को पत्रकार बनना चाहिए।"

"पहिले पत्रकार तब लेखक !" जनाव पत्रकार न होगा तो लेख छपेंगे कैसे ?"

"दूसरे पत्रकार न छापेंगे ?"

"उनकी मौज है।"

"मौज का क्या प्रश्न ! लेख छापने योग्य हो तो छापना चाहिए।"

"परन्तु छापने योग्य है या नहीं इसका निर्णय भी तो वे ही करेंगे।"

"हां, यह वात तो है !"

"तब लेखक का क्या स्थान रह गया। इसीलिये पहले सत्रकार बन जाइये, फिर चाहे जो अल्लम-गल्लम लिखिये और छापिये सब ठीक है।"

"इसका नाम जर्नलिज्म नहीं है।"

"फिर वही जर्नलिज्म। अरे पत्रकार कला कहिये। पत्रकार कला बात दूसरी है। उसका पन्थ ही निराला है !"

"उसका पंथ क्या है।"

"बस झोंके चले जाओ ! तुक मिले या न मिले। पत्र का कलेवर भर जाना चाहिए।"

"मैं इसे पत्रकारिता नहीं मानता।"

"जब तक छपे नहीं तब तक आपकी यह बात अरण्यरोदनवत् है। आपके विचार लोगों तक पहुँचेगे ही नही।"

"इसीलिए तो एक अखबार का हाथ में होना आवश्यक है।"

"तो लगाइये कोई डौल !"

"किसी पत्र में घुसने का प्रयत्न करूं।"

"पत्र में क्या बल्कि टाइप में घुस जाइये तो और भी अच्छा ! फिर तो जो कुछ छपेगा वह सब आपका ही होगा।"

इस पर वह मुस्करा कर बोले—"तो आप किसी पत्र के सम्पादक को लिख दें कि मुझे स्थान देदे।"

"लिखने से काम न चलेगा। मैं यह बात छापूंगा। मैं भी अखबार में घुसने का प्रयत्न कर रहा हूँ। बस जहाँ घुस पाया पहले आपके लिए छापूंगा। तब देखें आपको कैसे स्थान नहीं मिलता।"

"अच्छी बात है तब तक मैं प्रतीक्षा करूंगा।"

"जी हां प्रतीक्षा कीजिये। परन्तु रोटी के किए कुछ प्रबन्ध कर लीजिएगा। क्योंकि प्रतीक्षा करने का कार्य इस जीवन में सफल हो या न हो, कौन ठीक !"

"खैर मैं तो प्रतीक्षा करूंगा ही और यह भी प्रयत्न करता रहूँगा कि तब तक कहीं स्थान मिल जाय।"

यह कहकर वह विदा हुए।

शहर की हवा

मौजा अभिनन्दनपुर एक बड़ा मौजा है। इसमें ठाकुरों का बस्ती अधिक है। ठाकुरों के पश्चात् अहीरों की जनसंख्या का आधिक्य है। ब्राह्मणों के केवल चार-पाँच घर हैं।

इस मौजे में ज्ञानसिंह तथा सुजानसिंह नाम के दो भाई रहते थे। ज्ञानसिंह की वयस ३० वर्ष के लगभग थी और सुजान की २५ के लगभग। दोनों के विवाह हो चुके थे। ज्ञानसिंह के एक अष्ट वर्षीय पुत्र तथा षट् वर्षीया कन्या थी। सुजानसिंह के केवल एक तीन वर्ष का पुत्र था।

दोनों भाईयों में बड़ा प्रेम था। दोनों सुखी थे। चालीस बीघा के लगभग खेती थी। गाय-भैंसे सभी थी। दूध-घी का पूर्ण सुख था। दोनों खूब दूध पीते थे और कसरत करते थे।

अत: दोनों बलिष्ठ तथा स्वस्थ थे। जब कभी दोनों किसी बात पर लाठी लेकर निकल आते थे तो अच्छों अच्छों का साहस छूट जाता

था। दस-बीस आदमियों को भगा देना इन दोनों के लिए साधारण बात थी।

संध्या हो चुकी थी। ज्ञानसिंह अपनी चौपाल में बैठा हुआ था। इसी समय एक युवक उधर से निकला। उसने ज्ञानसिंह से पूछा—"सुजान भाई कहां हैं ?"

"दिशा-मैदान गया होगा। क्यों ?"

"कुछ काम था।"

"तो आओ बैठो—आता होगा।"

"हम उधर ही जा रहे हैं—वहाँ मिल लेंगे।"

यह कहकर युवक चल दिया। गाँव के बाहर होकर वह खेतों की ओर चला। इसी समय सामने से सुजान आता दिखाई पड़ा। दोनों एक दूसरे को देख कर किंचित मुस्कराये। कुछ और निकट पहुंचने पर सुजान ने पूछा—"किधर चले कंचन !"

कञ्चनसिंह बोला–"तुम्हारी ही तलास में आये थे।"

"अच्छा ! क्या बात है !"

"कहीं चल कर बैठो तो बतावें, यहाँ क्या बतावें।"

"तो आओ उधर एकान्त में चलें।"

"चलो ! दिशा–मैदान हो आये ?"

"हां !"

दोनों कटे हुए खेतों में घुस गये। कुछ दूर पर बिलकुल एकान्त था। वहाँ एक खेत की मेंड़ पर बैठ कर सुजान ने पूछा—"कहो क्या बात है।"

"सब ठीक-ठीक हो गया है भाई। अब तुम्हारी सहायता की आवश्यकता है।"

"ठीक-ठीक क्या हो गया पहले यह बताओ।"

"वह भाग चलने को राजी है। दिन और समय भी नियत हो

गया है।"

"कौन दिन ?"

"बफै ! संध्या को।"

"आज कौन दिन है सोमवार। दो दिन बीच में हैं।"

"और क्या ! अब तुम्हारी सहायता की आवश्यकता है।"

"किन्तु भइया को पता न लगे।"

"उन्हें पता काहे को लगेगा।"

"हाँ ! वह सुनेंगे तो बहुत नाराज होंगे।"

"नहीं जी, उन्हें पता नहीं लगेगा।"

"तो मैं तैयार हूँ। और कोई भी रहेगा ?"

"हाँ ! लछमन अहीर रहेगा।"

"ठीक ! आदमी तगड़ा और हिम्मती है।"

"अहीरों में उसके मुकाबले का पट्ठा इस गाँव में तो है नहीं।"

"यह भी ठीक है। बस ! या और कोइ ?"

"और मैं !"

"बस काफी हैं—हम तीन तो तीस पर भारी पड़ेंगे।"

"लेकिन एक कठिन समस्या भी है।"

"वह क्या ?"

"उसे लाकर रखूंगा कहां ! अपने घर में तो रख नहीं सकूंगा।"

"और कोई ठिकाना नहीं है।"

"कोई नहीं। किसी पर विश्वास नहीं जमता। तुम पर विश्वास है। यदि तुम—।"

सुजान बात काट कर बोला—"मेरे यहाँ असम्भव है। मैं तो रख लेता परन्तु भइया इसे कदापि मन्जूर न करेंगे।"

"तब फिर क्या किया जाय।"

"किसी दूसरे गाँव या शहर में ठीक रहेगा।"

"गाँव में ! गाँव में तो नहीं, हाँ शहर में हो सकता है। दो चार दिन तो किसी धर्मशाला में काटे जा सकते हैं—यदि धर्मशाला बदलते रहो तो चाहे महीना बीस दिन गुजार दो। मकान किराए पर भी ले सकते हो।"

"हाँ शहर में तो सब कुछ हो सकता है।"

"तो शहर ही ले जाओ।"

"अच्छी बात है लेकिन दोनों साथ साथ गायब होंगे तो लोग समझ जायेंगे।"

"तुम एक दिन पहिले से घर से बिदा हो लो! कह देना कि एक काम से बाहर जा रहे हो। जंगल में आकर छिप रहना—मैं तुम्हें खाना पहुँचा दूंगा, एक रात तो काटना है।"

"वाह मित्र ! बड़ी सुन्दर युक्ति बताई--ऐसा ही करूंगा।"

(२)

अभिनन्दनपुर से एक मील की दूरी पर एक दूसरा मौजा जगतपुर था। यह मौजा छोटा मौजा था। इस मौजे में भी अधिकांश ठाकुरों की बस्ती थी। इस मौजे के ठाकुर परिवार की एक वयस्क कन्या से कञ्चन सिंह का प्रेम-सम्बन्ध हो गया। वह कन्या कञ्चनसिंह के साथ भागने को तैयार हो गई।

कञ्चनसिंह एक दिन पूर्व शहर जाने का बहाना करके घर से चल दिया और ढाक के जंगल में, जो दोनों गाँव के मध्य में था, छिप गया! सुजान ने उसे खाना पहुँचा दिया।

नियत दिन और समय पर तीनों व्यक्ति जगतपुर की बस्ती से कुछ दूर पर आम के एक घने बाग में छिप रहे। तय यह हुआ कि जब कञ्चनसिंह अपनी प्रेमिका को लेकर भागे और यदि उनका कोई पीछा करे तो सुजान और लछमन जो बटोही की भांति चले जा रहे हो उनसे झगड़ा करके उन्हें रोक लें—अन्यथा अपने घर चले जायँ !

परन्तु जिस समय कञ्चनसिंह कन्या को लेकर चला तो किसी ने भी उसका पीछा न किया, क्योंकि किसी ने उन्हें जाते देखा ही नहीं अतः सुजान और लछमन सीधे गाँव चले आये—कञ्चनसिंह कन्या को लेकर निकल गया।

सुजानसिंह को आशा थी कि लड़की के भागने पर उसके परिवार वाले काफी हो हल्ला मचावेंगे, थाने पर रपट लिखायेंगे, परन्तु यह कुछ भी न हुआ। लड़की के परिवार वालों ने साँस डकार तक न ली। सुजानसिंह ने सोचा—"इज्जत-आबरू के भय से लड़की के घर वाले चुप्पी साध गए।"

सुजनसिंह ने सोचा "चलो यह भी अच्छा हुआ! अब सुजान निश्चिन्त होगया।"

कंचनसिंह को गये एक सप्ताह होगया। संध्या समय कंचनसिंह के पिता सुलोचनसिंह सुजानसिंह के पास आये। दोनों भाई तथा गाँव के दो-चार व्यक्ति चौपाल में बैठे थे। सुलोचनसिंह ने आकर सुजान से पूछा—"कंचन शहर गया है—तुम्हें मालूम होगा।"

"हाँ कहता तो था। बल्कि मुझसे भी कह रहा था कि चलो, पर मैं नहीं जा सका।"

"दो—तीन दिन को कह कर गया था—आज सात-आठ दिन हो गये।" सुलोचन ने चिन्ता प्रदर्शित करते हुए कहा।

"आ जायगा! किसी कारण से अटक गया होगा।"

"वैसे तो कोई बात नहीं थी, परन्तु शहर का मामला है इससे डर लगता है?"

"शहर से क्यों डर लगता है?"

"वहाँ अनेकों व्याधियाँ रहती हैं। पुलिस चोर-बदमाश; मोटर-तांगा—न जाने कितनी बलाएं हैं शहर में। जरा जरा सी बात में पुलिस धर लेती है, चोर-बदमाश ताक में रहते हैं, सड़कों पर मोटर-

ताँगों की इतनी भीड़ रहती है कि जरा चूक जाओ तो प्राण ही चले जांय। इन सब बातों के कारण चिन्ता है।"

"सो ऐसी कोई बात न होगी। कंचन बड़ा हुसियार आदमी है। वह ऐसी किसी बला में फँसने वाला आदमी नहीं है।"

"हाँ! परन्तु फिर भी खटका तो है ही।"

इसी समय उपस्थित लोगों में से एक ने सुलोचन से कहा—"सुना है कि जगतपुर के ठाकुर प्रमोदसिंह की बिटिया निकल गयी।"

"कब?" ज्ञानसिंह ने चौकन्ने होकर पूछा।

"यह तो ठीक पता नहीं। वह किसी को कुछ बताते ही नहीं। यह तो उड़ती सी खबर आई है।"

सुलोचनसिंह ने कहा—"हमें तो मालूम नहीं।"

"हमने सुना है, भगवान जाने सच है या झूठ।"

सुलोचनसिंह ने मुख से तो कुछ नहीं कहा पर उनकी चिन्ता पहिले से द्विगुण हो गई।

चलते समय उन्होंने सुजान से कहा—"जरा सुनना बेटा!"

सुजान उठकर उनके पास आया। कुछ आगे बढ़ कर सुलोचन ने सुजान से कहा—"कंचन अकेला ही गया होगा। जाते समय तुमसे मिला था?"

"हां, मिला था! मेरे सामने वह अकेला ही था। क्यों?"

"बात यह है कि उधर मुझे खबर लगी थी कि प्रमोद सिंह की लड़की और कञ्चनसिंह में कुछ मामला चल रहा है। अब कंचनसिंह शहर गया और इसी समय प्रामोद सिंह की लड़की भी गायब हो गई। तो कहीं—।"

यह कहकर सुलोचन ने सुजान को रहस्यपूर्ण दृष्टि से देखा। सुजान सिंह बोला—"पहिले यह भी तो निश्चय हो कि लड़की सचमुच भाग गई है।"

"हाँ ! यह निश्चय करना अभी बाकी है। अच्छा आज पूरा पता लगा लूंगा।"

यह कहकर सुलोचनसिंह चला गया।

(३)

दूसरे दिन कंचनसिंह आगया। सुजान से भेंट होने पर सुजान ने उससे पूछा—"उसे कहाँ रख आये।"

"कहीं नहीं।"

"क्या मतलब !" सुजान ने माथा सिकोड़ कर कहा।

"मतलब यह कि उसे उसके भाग्य पर छोड़ दिया।"

"सो कैसे ?"

"बस धर्मशाला में छोड़ कर नौ-दो ग्यारह होगया।"

"आँय ! उस अबला को अकेली और असहाय छोड़ आये।"

"मैं माँस खाता हूँ–हड्डी गले में नहीं डालता।"

इतना सुनते ही सुजान ने एक घूंसा कँचन के मुंह पर जमाया और कहा—"क्या इतने के लिए ही मुझे इस पाप में शरीक किया था।"

घूँसा पड़ते ही कंचनसिंह का सिर चकरा गया—मुंह में खून आ गया।

कंचनसिंह जबड़े को सहलाता हुआ बोला--"इसका बदला न लिया तो कंचन नाम नहीं।"

यह कहकर वह चलने लगा। सुजान ने उसका गला पकड़ कर कहा—"जाते कहाँ हो। तुम्हें मेरे साथ शहर चलना पड़ेगा।"

"क्यों ?"

"उसको तलाश करने ?"

"और न जाऊं तो ?"

"तो मैं तुम्हें जान से मार दूंगा।"

"तुम्हें क्या हो गया है सुजान ! उस लड़की से तुम्हारा क्या

वास्ता !"

"वास्ता ! वास्ता केवल मनुष्यता का है ।"

"वह एक अबला है, अपनी जाति की है। तुम्हारे प्रेम पर विश्वास करके वह तुम्हारे साथ भागी । तो अब तुम विश्वासघात करते हो। मैं ऐसा कभी न होने दूँगा ।"

"तुम्हें इस झगड़े से क्या मतलब ।"

"मतलब क्यों नहीं । मैं तुम्हारी सहायता के लिए गया था ।"

"मेरी सहायता तुमने क्या समझ कर की थी ।"

"यह समझ कर कि तुम उसका जन्म-भर निर्वाह करोगे ।"

"बड़े बेवकूफ हो ? ऐसे कहीं जन्म भर निर्वाह होता है ।"

"हाँ होता है ! और तुमको करना पड़ेगा ।"

"पागल हो ?"

"हाँ ! और इतना पागल हूँ कि यदि तुमने मेरी बात न मानी तो तुम्हारी जान ले लूंगा ।" यह कह कर सुजान चल दिया ।"

दूसरे दिन सुजान कंचनसिंह को लेकर पहुँचा और उसी धर्मशाला में निवास किया । लड़की धर्मशाला में नहीं थी । पता लगाने पर ज्ञात हुआ कि लड़की वहां से चली गई ।

तीन दिन तक ये दोनों घूमे, तमाम गलियाँ और मुहल्ले छाने पर कुछ पता न चला । तीसरे दिन संध्या समय जब ये दोनों निराश होकर धर्मशाला लौट रहे थे तो वैश्याओं के मुहल्ले से निकले ! एक छज्जे पर दृष्टि पड़ते ही कंचन सुजान की बाँह पकड़ कर बोला—

"वह है छज्जे पर !"

"कल तो नहीं थी, कल भी इधर से निकले थे ।"

"हाँ कल नहीं थी ।"

दोनों मकान पर चढ़ गये । लड़की कंचन को देखते ही उससे लिपट कर रोने लगी ।

कुछ शान्त होने पर उसने बताया –"धर्मशाला से एक बुढ़िया उसे अपने साथ यहाँ ले आई। वह मुझ से वेश्यावृत्ति करने को कहती रही, मैंने इन्कार किया। तब उसने मुझे एक कोठरी में बन्द कर दिया। आज सुबह मैंने मजबूर होकर उसकी बात मान ली। इसलिए उसने मुझे छज्जे पर बिठाया, ईश्वर ने मेरी लाज बचा ली कि पहिले तुम्हीं दोनों आये और कोई नहीं आया।"

सुजानसिंह ने एक दूसरे गाँव में अपने एक मित्र के यहां दोनों को लेजाकर विधि-पूर्वक दोनों का विवाह करा दिया।

एक सप्ताह पश्चात जब ये दोनों गाँव पहुँचे, लड़की को मित्र के यहाँ छोड़ दिया, तो ज्ञानसिंह ने पूछा—"इतने दिन कहा लगाये ?"

"ऐसे ही काम लग गया था।"

यह कहकर सुजान हाथ-मुंह धोने चला गया। ज्ञानसिंह उपस्थित लोगों से बोला—

"कंचन की संगत में यह भी आवारा होता जा रहा है। एक सप्ताह शहर में रहा-भगवान जाने वहाँ क्या करता रहा।"

"शहर की हवा लगना ठीक नहीं।" एक ने कहा।

"अब कभी शहर जाय तो बताऊँगा, कन्चन का साथ छुड़ाना पड़ेगा। कन्चन इसको भी बिगाड़ देगा।"

"वह चालाक है—यह है बुद्धु !"

"यही तो बात है। कन्चन का रंग इस पर बड़ी जल्दी चढ़ जायगा। लेकिन मेरे मारे चढ़ पायगा तब तो।।"

अतिचार

सन्ध्या का समय था। थाना इन्चार्ज सखावत हुसैन थाने के प्रांगण में मेज-कुर्सी लगाये बैठे थे। उसके समीप ही उनके सेकेण्ड अफसर ठाकुर चन्द्रवलीसिंह बैठे थे। इसी समय इंचार्ज साहब के इलाके के सबसे बड़े जमींदार हरीराम थाना के अन्दर प्रविष्ट हुए।

हरीराम की वयस चालीस वर्ष के लगभग थी। लम्बा-तगड़ा जवान था। हरीराम थाना के द्वार से ही चिल्लाया—"आदाब अर्ज है इंचार्ज साहब।"

इंचार्ज साहब उठकर खड़े हो गये और बोले—"आदाब! आदाब! आइये चौधरी साहब! मिजाज अच्छे हैं?"

"सब आपकी दुआ है।" कहते हुए हरीराम इंचार्ज साहब के निकट पहुँच गये। इंचार्ज साहब ने उनसे हाथ मिलाकर कहा—"तशरीफ रखिये।"

चौधरी साहब कुर्सी पर बैठ गये। इंचार्ज साहब ने पूछा—"सब खैरियत?"

"सब ईश्वर की दया है । कहिए ठाकुर साहब आप तो अच्छी तरह ?" चौधरी साहब ने सेकेण्ड अफसर से पूछा।

"आपकी कृपा है। आज कई दिन बाद दर्शन दिये।"

"हाँ, इधर कुछ काम लग गया था, इससे न आ सका।"

"भई चौधरी साहब के लिए पान मँगवाओ।"

"बहुत अच्छा ! अरे भइ भोलासिंह देखो हमारे यहाँ से पान तो बनवा लाओ। हाँ ! ठहरना। चौधरी साहब शर्बत पीजिएगा ?"

"क्यों तकलीफ कीजिएगा ?" चौधरी साहब ने कहा।

"वाह तकलीफ काहे की। मैं शहर गया था वहां से सन्तरे का शर्बत लाया हूँ—वह पीजिए।"

"हाँ भई वह पिलाओ। अच्छा शर्बत है चौधरी साहब।"

ठाकुर चन्द्रावलीसिंह स्वयं उठकर गये। उनके जाते ही चौधरी साहब इंचार्ज साहब से बोले—"भई मीर साहब, वह कमबख्त तो हत्थे नहीं चढ़ती।"

"अच्छा ताज्जुब है।"

"बड़ी हठीली औरत है। गरीब होते हुए भी यह हालत है कि रुपये का लालच भी उसे काबू में नहीं ला सकता।"

"तब तो मजबूरी है।"

"आपके होते हुए अगर वह कब्जे में न आई तब तो बड़े अफसोस और ताज्जुब की बात है।"

"तो मैं क्या करूं ? आप ही बताइये।"

"आप सबकुछ कर सकते हैं।"

"क्या कर सकता हूँ आप भी तो कुछ कहिये।"

"यह तो पुलिस का दिमाग़ ही सोच सकता है।"

"ज़मीदारों का दिमाग़ भी इस मामले में कुछ कम नहीं होता।" इंचार्ज साहब ने मुस्कराकर कहा।

"लेकिन जमीदारों का दिमाग़ तो तभी कुछ कर सकेगा जब पुलिस की मदद होगी।"

"आप जो भी कार्रवाई करें उसमें मैं आपकी मदद करने को तैयार हूँ।"

"फिर बहानेबाजी न बताना।"

"वादा करता हूँ—आप जो भी करेंगे मैं आपके मुवाफिक रहूंगा।"

"बेहतर है। अगर वह रेल्वे का नौकर न होता तब तो मैं खुद ही निबट लेता मगर वह है रेल्वे का खलासी, इसलिए बिना आपकी मदद के काम न बनेगा।"

"ठीक है। आप कोई तरकीब निकालिये।"

इसी समय ठाकुर साहब शरबत तथा पान लेकर आगये। नौकर ने चौधरी साहब को शरबत का गिलास दिया और पानों की तश्तरी रखकर खड़ा हो गया।

चौधरी साहब ने शरबत पिया। शरबत पीकर बोले—'शरबत तो अच्छा है।"

"हाँ एक खास दुकान का है।"

"हमें भी बता दीजिए, हम भी मँगवावेंगे।"

इंचार्ज साहब बोल उठे—"ठाकुर साहब तो शहर आते ही जाते रहते हैं, लादेंगे।"

ठाकुर साहब बोल उठे—"हाँ! हाँ! मैं लादूँगा।

"तो छः बोलतें लेते आइयेगा।"

"बहुत अच्छा! ला दूँगा।"

इसके पश्चात् कुछ देर बातें करके चौधरी साहब विदा हुए।

(२)

रामलखन अहीर रेल्वे स्टेशन का खलासी है। रेल्वे क्वार्टरों के एक कोने में उसका घर है। दैवसंयोग से उसे बड़ी सुन्दर पत्नी मिली

है। उसके सौन्दर्य की चर्चा आस-पास सर्वत्र है। रामलखन उसे बड़े यत्न से रखता है। पर्दे में तो वह रहती ही है, इसके अतिरिक्त वह अन्य प्रकार से भी बड़ा सतर्क रहता है।

एक बार चौधरी हरीराम की उस पर दृष्टि पड़ गई। तब से वह उसे अपने अधिकार में लाने का प्रयत्न करने लगे। रामलखन के पड़ौस में रहने वाले एक खलासी की स्त्री को उन्होंने इस कार्य के लिए नियुक्त किया! उस स्त्री द्वारा उन्होंने उसे सब प्रकार से फुसलाने का प्रयत्न किया, परन्तु वह किसी प्रकार भी चौधरी साहब की पाप-वासना के प्रति आत्मसमर्पण करने को प्रस्तुत नहीं हुई।

इंचार्ज साहब से मिलने के एक सप्ताह पश्चात् चौधरी साहब द्वारा नियुक्त की गई स्त्री के पति महँगू ने थाने में आकर एक चोरी की रिपोर्ट दर्ज कराई। उसने कहा कि उसके कुछ बर्तन चोरी चले गये हैं और उसका सन्देह है कि रामलखन की स्त्री ने उक्त बर्तन चुराये हैं।

मँहगू एक रिपोर्ट लिखाकर चला गया। उसके जाने के थोड़ी ही देर पश्चात् चौधरी साहब थाने पहुँचे। इंचार्ज साहब ने मुस्कराकर पूछा—"कहिये! यह आपकी दिमाग की उपज है?"

"जनाब! जब पुलिस का दिमाग फेल हुआ तब जमींदारी दिमाग ने अपना काम किया।"

"खूब किया! अच्छा अब आप क्या चाहते हैं।"

"अब तो सीधी बात है। रामलखन की घर की तलाशी और बर्तन बरामद!"

"उसके बाद?"

"उसके बाद रामलखन की औरत को गिरफ्तार करके थाने लाइये।"

"ठीक! लेकिन रेल्वे का आदमी है, यह खयाल रखिये।"

"कानून की गिरफ्त में आ जाने पर चाहे जिसका आदमी हो,

आपको अपना फर्ज अदा करना चाहिए।"

"अच्छी बात है। लेकिन मँहगू के वर्तन ?"

"वह मैं अपने साथ लाया हूँ, गाड़ी पर हैं, किसी कान्स्टेबिल को भेजकर मँगा लीजिए।"

इंचार्ज साहब ने एक कान्स्टेबिल को बुलाकर धीरे से कहा—"चौधरी साहब की गाड़ी पर कुछ बर्त्तन धरे हैं—उठा लाओ और उन्हें चुपके से अलहदा रख लो।"

कान्स्टेबिल जाकर बर्त्तन की गठरी उठा लाया।

चौधरी साहब ने पूछा—"तो कब जाइयेगा ?"

"मैं तो जाऊँगा नहीं, ठाकुर साहब को भेजूँगा।"

"आज ही !"

"हाँ आज ही !"

"अच्छी बात है। तो मैं जाता हूँ। मुझे खबर भेजवा दीजियेगा।"

"हाँ ! हाँ !"

चौधरी साहब चले गये।

उनके जाने के बाद इंचार्ज ने ठाकुर साहब को बुलाया और कहा-"मँहगू ने रिपोर्ट लिखाई है उसकी तलाशी लेने जाना है।"

"बहुत अच्छा !"

"बर्त्तन बरामद करने होंगे।"

"क्या ?" ठाकुर साहब बोले।

"भई, चौधरी साहब हमारे दोस्त हैं, मेहरबान हैं। उनकी ख्वाहिश तो पूरी करनी ही पड़ेगी। अजाब-सवाब उनके सिर पर, हम तो दोस्ती का हक अदा करते हैं।"

ठाकुर साहब कुछ क्षण सोचकर बोले—"रेल्वे का आदमी है।"

"हुआ करे ! हमें अपना काम करना है।"

"बर्त्तन कहाँ मिलेंगे ?"

"थाने में मौजूद हैं।"

"कैसे हैं ?"

"जाकर देख लीजिए।"

ठाकुर साहब गये और लौटकर आ गये।

"ये तीन बर्तन हैं छोटे-छोटे, दो कटोरी और एक गिलास !"

"यह और भी अच्छा है। आसानी से काम हो जायगा।"

"हाँ बड़े बर्तनों को छिपाकर ले जाना मुश्किल पड़ता।

"चौधरी साहब ने पहले ही सब सोच लिया! आखिर जमीदार ही ठहरे।"

"तो कब जाऊँ ?"

"जब आपकी मर्जी हो।"

"खाना खाकर चला जाऊँगा।"

"ठीक है। औरत पर ही इलजाम है उसी को गिरफ्तार करके लाइयेगा।"

"बेहतर है।"

ठाकुर साहब चले गये।

(३)

तीन बजे दिन के लगभग ठाकुर साहब तीन कान्स्टेबिलों सहित रामलखन के कार्टर पहुँचे। तलाशी के समय मँहगू ठाकुर साहब के साथ था। उसके बर्तन रामलखन के घर से बरामद हुए।

महँगू ने अपने बर्तनों की शिनाख्त की।

रामलखन हक्का-बक्का रह गया।

ठाकुर साहब ने रामसखन की औरत को हिरासत में ले लिया। रामलखन बहुत रोया-बिलबिलाया, परन्तु उसकी एक न सुनी गई।

अन्त में वह दौड़कर स्टेशन मास्टर को बुला लाया। स्टेशन मास्टर ने कहा—"आप जमानत लेकर इसे छोड़ दीजिए।"

ठाकुर साहब बोले—"आप थाने पर तशरीफ लावें, वहाँ जैसा होगा, वैसा किया जायगा।

यह कहकर ठाकुर साहब औरत को लेकर चल दिये। रामलखन साथ-साथ चला।

थाने में पहुँच कर ठाकुर साहब ने औरत को हवालात में बन्द करवा दिया। रामलखन ने पूछा—"हुजूर, मैं जमानत दूँगा। स्टेशन मास्टर साहब जमानत दे देंगे।"

"तो उनको जाकर लाओ! अब आज तो जमानत होगी नहीं, कल सबेरे आना।"

"कल?" रामलखन, अत्यन्त घबराकर बोला।

"हाँ!"

"आज नहीं होगी?"

"कैसे हो सकती है। शाम हो गई है! तुम इतनी दूर जाओगे और लौटते—रात हो जायगी। कल सबेरे ही होगी।"

"तो मैं यहाँ रात को आकर रह सकूँगा। मैं स्टेशन मास्टर से छुट्टी ले आऊँगा। रात में यहीं पड़ा रहूँगा।"

"यहाँ नहीं रह सकते।"

"क्यों?"

इंचार्ज साहब डाँट कर बोले—"बस चले जाओ! क्यों-क्यों का यहाँ काम नहीं है।"

रामलखन अपनी पत्नी से मिलकर और उसे प्रातःकाल जमानत पर छुड़ा लेने का आश्वासन देकर रोता हुआ चला गया।

प्रातःकाल स्टेशन मास्टर साहब थाने पहुँचे और सौ रुपये की जमानत देकर रामलखन की स्त्री को छुड़ा लाये।

परन्तु रामलखन की पत्नी अस्वाभाविक रूप से मौन तथा गम्भीर थी।

घर पहुंच कर रामलखन ने अपनी पत्नी से बात की, पर वह मौन रही। रासलखन ने पूछा—"तू गुमसुम क्यों है, बात का जबाब क्यों नहीं देती ?"

"क्या जवाब दूं ?" स्त्री ने झुंझला कर कहा।

"रात को वहाँ कैसे रही ?"

"जैसे भगवान ने रक्खा वैसे रही।"

"भगबान ने कैसे रखा।"

"यह जाकर चौधरी साहब से पूछो।

यह सुनते ही रामलखन को काठ मार गया। कुछ देर मौन रहकर उसने पुनः पूछा—"चौधरी साहब ने क्या किया ?"

"हमारी इज्जत ले ली, यह किया।"

यह कहकर औरत ने रोना आरम्भ किया।

रामलखन दाँत पीसकर बोला—"अच्छा !"

कुछ देर विचार करके रामलखन बोला—"अच्छा खैर जो हुआ सो हुआ अब यह बात किसी से न कहना। जमीदार हैं, जबरदस्त हैं ! भगवान उनको समझेगा।"

स्त्री ने कोई उत्तर न दिया।

रामलखन अपनी ड्यूटी पर चला गया रामलखन रात को नौ बजे गाड़ी निकाल कर घर लौटता था। आज जब वह घर लौटा तो उसकी स्त्री घर पर न थी।

उसने इधर-उधर देखा, कुएँ पर गया। कि कदाचित पानी भरने गई हो, परन्तु वह वहाँ भो नहीं थी।

इस समय स्टेशन पर कुछ हल्ला हुआ। रामलखन स्टेशन की ओर दौड़कर गया। उसने देखा कि कुछ खलासी और स्टेशन मास्टर साहब सिगनेल की ओर दौड़े चले जा रहे हैं। उसने एक खलासी से पूछा—"क्या बात है ?"

कोई आदमी कट गया है !

रामलखन का न जाने क्यों हृदय डूबने लगा। वह उसके साथ दौड़ा परन्तु उससे दौड़ा न गया, उसका हृदय बुरी तरह धड़क रहा था।"

जो लोग आगे पहुँचे उन्होंने लालटेन से देखा। एक बोला—"यह तो औरत की लाश है।"

दूसरा बोला—"यह तो रामलखन की औरत है।"

रामलखन के कानों में भी ये शब्द पहुँचे, वह वहीं चक्कर खाकर गिर गया।

❀ ❀ ❀

उपर्युक्त घटना के पाँचवें दिन चौधरी साहब थानेदार से मिलने गये।

"उस औरत ने अपनी जान दे दी चौधरी साहब बड़ी हयादार औरत निकली।"

"क्या कहूँ मीरसाहब ! मुझे ऐसी उम्मीद न थी। इन लोगों में ऐसी औरत हजार दो हजार में एक ही निकलती है।"

"बेशक ? मगर यह खून किसकी गर्दन पर है, यह तो बताइये।"

"मैं क्या बताऊँ मीरसाहब ! मुझे सख्त अफसोस है।"

इंचार्ज साहब बोले—"आपकी दोस्ती में मुझसे भी गुनाह होगया। खुदा रहम करे।"

"आयन्दा के लिए सबक हो गया।"

इसी प्रकार की बातें करके चौधरी साहब थाने के बाहर आये। सड़क पर से हटकर एक वृक्ष की छाया में उनकी गाड़ी खड़ी थी। संध्या का अन्धेरा हो चला था।

जैसे ही जमींदार साहब थाने के बाहर हुए वैसे ही एक वृक्ष की आड़ से निकलकर रामलखन उनकी ओर लपका और पीछे से उसने चौधरी साहब की पीठ पर करौली मारी। ठाकुर साहब लड़खड़ा कर गिरे। रामलखन भाग खड़ा हुआ।

मीठे बोल

दोपहर का समय था। मोहनपुर गाँव के एक खेत में एक अधेड़ कृषक तथा उसका अष्टदश वर्षीय पुत्र बम्बे का पानी लगा रहे थे। व्यक्ति का नाम शिवशंकर शुक्ल तथा उसके पुत्र का नाम दुर्गाशंकर था,

इसी समय एक व्यक्ति हाथ में लाठी लिये हुए आया और खेत की मेंड़ पर खड़े होकर इन पिता—पुत्र को कार्य करते देखने लगा। यह व्यक्ति भी अधेड़ था परन्तु खूब हट्टा-कट्टा तथा बलिष्ठ था।

कुछ देर तक वह चुपचाप खड़ा देखता रहा। तदुपराँत सहसा बोला—"आज यह खेत पूरा कर डालो महाराज, कल हमारे खेत में पानी लगेगा।"

"आज! आज तो नहीं हो पायगा ठाकुर।" शिवशंकर ने मेंड़ काटते हुए कहा।

"नहीं हो पायगा तो तुम्हारा ही नुकसान होगा—यह याद रखना। कल हम पानी नहीं लगाने देंगे।"

"ऐसा न करना ठाकुर ! कल न सही तो परसों जरूर तुम्हें मिल जायगा ।"

"हम यह कुछ नहीं जानते । हम कल पानी जरूर लगायँगे ।"

शुक्ल महाराज काम छोड़ कर सीधे खड़े हो गये और बोले—"कोई जिद है क्या ?"

"अब जो समझो ।"

"यह तो जबरदस्ती है ठाकुर ।"

"हम तुम्हें बाह्मन समझ कर पानी ले लेने देते हैं नहीं तो दूसरे की मजाल नहीं है जो इस कुलाबे से पानी ले ले ।"

"कुलाबा तो सरकारी है । इस पर सब का अधिकार है ।"

"देखो महाराज, कानून तो बघारो नहीं । यह है देहात ! यहाँ तो जैसा हम कहेंगे वैसा होगा ।"

"देहात है तो क्या यहां न्याय—अन्याय का कोई विचार नहीं ? ऐसा अन्धेर नहीं हो सकता कि हमारा खेत अधर में रह जाय और तुम पानी काट लेओ । हमारा खेत हो जाय, फिर तुम्हें अधिकार है । जब तक हमारा खेत नहीं हो जायगा तब तक हम पानी नहीं काटने देंगे ।"

"नहीं काटने दोगे ? अच्छा ! तो अब हम पानी जरूर काटेंगे—चाहे जो होजाय ।"

यह कह कर ठाकुर चल दिया ।

दुर्गाशंकर बोला—"यह झगड़ा करने पर उतारू है चाचा ।"

"हाँ जान तो ऐसा ही पड़ता है ।"

"फिर ?"

"फिर क्या ! जो होगा देखा जायगा । हम अध-बीच में तो खेत छोड़ नहीं देंगे ।"

"सो कैसे छोड़ा जायगा, पर कल इन्तजाम करके आना होगा—ठाकुर जरूर फ़ौजदारी करेगा ।"

"देखा जायगा।"

दोनों पुनः अपने काम में जुट गये। उधर ठाकुर गाँव की ओर गया और चमारों की बस्ती की ओर जाकर एक घर के सामने रुक गया। "जिउराखन हैं हो।"

ठाकुर के पुकारते ही एक चमार बाहर निकल आया। यह बड़ा बलिष्ठ आदमी दिखाई पड़ता था। ठाकुर उससे बोला—"कल हमारे खेतों की सिंचाई लगेगी जिउराखन।"

"कल ! अभी तो शिवशंकर महाराज सिंचाई कर रहे हैं।"

"हाँ, पर कल हमारी होगी।"

"कल तक तो उनका खेत नहीं हो पायगा।"

"हमें इससे क्या मतलब ! हो चाहे भाड़-भट्टी में जाय—हमारा पानी कल लगेगा—लगेगा। कल सबेरे आ जाना।"

"अच्छा ठाकुर ! आने को तो हम आ जायँगे, पर आज सुकुल का खेत हो नहीं पायगा।"

"तुम्हें सुकुल से मतलब है या हमसे—यह बताओ।"

"नहीं ठाकुर, मतलब तो हमें तुम से ही है। हमने तो बताया कि आज नहीं हो पायगा।"

"हो चाहे न हो—हमारी बला से !" यह कह कर ठाकुर चल दिया।

(२)

शिवशंकर संध्या समय गाँव के मुखिया के पास पहुँचे। मुखिया भी एक ठाकुर महोदय ही थे। मुखिया ने शुक्ल को देख कर पालागन किया। शुक्ल जी आशीर्वाद देकर पड़ी हुई चारपाई पर बैठ गये।"

मुखिया ने पूछा—"सब खैर सल्लाह !"

"हाँ, सब ठीक है, पर एक फरियाद है।"

"क्या ?"

"ठाकुर पहलादसिंह कल कुलाबे का पानी अपने खेत में लगाने कहते हैं। हमारा खेत आधा हुआ है, आधा पड़ा है। गाँव भर जानता है कि हमारा यह खेत दो दिन में होता है और हमेशा हमें दो दिन मिलते रहे, पर इस बार ठाकुर एक दिन ही देते हैं। ऐसा अन्याय तो न होना चाहिए।"

"तुमसे उनसे कुछ बात हुई ?"

"हाँ, ! हमारे खेत पर गये थे तब बात हुई थी। हमने बहुत कहा-सुना, पर जितना हमने कहा उतने ही वह और भी अकड़ गये। अब फौजदारी करने पर तैयार हैं।"

"यह कैसे कहते हो।"

"हमें अभी-अभी पता लगा है।"

"फौजदारी क्या करेंगे।"

"नहीं मुखिया, वह अपने आदमियों से कह चुके हैं कि कल पानी जरूर लगेगा। यह फौजदारी के लच्छन नहीं तो क्या हैं। वह पानी काटेंगे, हम काटने नहीं देंगे, तब फौजदारी न होगी तो क्या होगा।"

"ऐसा नहीं करेंगे।"

"तो उनको बुलाकर कह दीजिए।"

मुखिया ने एक आदमी से कहा—"जरा पहलादसिंह को बुला लाओ।"

वह व्यक्ति चला गया।

इधर मुखिया बोले—'तुम्हारा खेत कल हो जायगा ?"

"हाँ कल जरूर हो जायगा।"

"तो फिर बात कौन सी है, वह परसों लगा लेंगे। एक दिन में क्या बनता—बिगड़ता है।"

"कुछ नहीं ! पर उनकी जिद है।"

"देखो हम समझा देंगे।"

थोड़ी देर में ठाकुर प्रहलादसिंह आ गये।"

जब वह बैठ गये तो मुखिया ने कहा—"काहे पहलादसिंह क्या मामला है?"

"मामला कुछ नहीं! कल हम सिंचाई लगायेंगे।"

'लेकिन अभी सुकुल का खेत तो पूरा नहीं हुआ।"

"न हो। हम इसके जिम्मेवार नहीं हैं।"

"जिम्मेवार क्यों नहीं हो। जब तक इनका खेत न हो जाय तब तक तुम पानी कैसे ले लोगे?"

"इनका खेत न हो चार दिन।"

"चार दिन कैसे न हो! हमेशा दो दिन लगते रहे सोई हम दो मांगते हैं।" शुक्ल महाराज बोले।

"कल हमारा पानी लगेगा—यह हम जानते हैं। दुनिया का तोफान हमें नहीं आता।"

"तो इनका खेत अधूरा रह जायगा?" मुखिया ने कहा।

"रात में पूरा करलें।"

"तो ऐसी कौन सी आफत है। कल भर में तुम्हारा क्या बनता—बिगड़ता है।"

"आप इस झगड़े में न पड़ें, मुखिया! हम यह निबट लेंगे।"

"जब यह मेरे पास आये हैं तब मुझे कहना पड़ा। न आते तो हमसे कोई मतलब नहीं था।"

"बाह्मन की जाति तो ठहरी! गाँव भर में रोते फिर रहे हैं। हम तो किसी के पास नहीं गये।"

शुक्ल बोले—"देखो ठाकुर! हमारा हक न्याय का है, इससे हम सबसे कह रहे हैं। तुम कर रहे हो अन्याय, तुम किस मुँह से किसी से कह सकते हो।"

"अन्याय है तो अन्याय ही सही।" यह कह कर प्रहलादसिंह उठ

खड़ा हुआ और मुखिया से बोला—"आप हमारे बीच में न बोलें ! हम यह निबट लेंगे।"

यह कह कर प्रहलाद सिंह चला गया।

शुक्ल ने कहा—"देखा, मुखिया ! यह दशा है।"

"इसे बड़ा घमण्ड हो गया है। इधर पैदावार अच्छी हुई, भाव भी अच्छा मिल गया। इससे दिमाग आसमान पर है।"

"तो हमारे लिए क्या हुकुम होता है।"

"अब हम क्या बतावें महाराज ! जो तुम्हारी समझ में आवे करो।"

"अच्छी बात है।"

यह कह कर शुक्ल जी विदा हो गये।

(२)

दूसरे दिन सबेरे मुँह अँधेरे ही शिवशङ्कर और उनका पुत्र दुर्गा-शङ्कर लाठी लेकर कुलाबे पर जा डटे। खेत सींचने के लिए उन्होंने दो मजदूर लगा लिये।

इनके पहुँचने के थोड़ी देर बाद ठाकुर प्रहलादसिंह चार लट्ठ-बन्द आदमी लेकर कुलाबे पर पहुँचे। इन दोनों पिता-पुत्र को देख कर ठाकुर के माथे पर बल पड़ गये। अपने आदमियों से उसने कहा—"काट लेओ पानी।"

शिवशङ्कर बोले—"यह किराये के टट्टू क्या पानी काटेंगे। तुम्हारी हिम्मत हो तो काटो। यह कोरी-चमार हम ब्राह्मणों के सामने आ सकते हैं ?"

"जिउराखन ! क्या देखता है, अपना काम कर।"

जिउराखन शुक्ल से बोला—"तुम्हीं गम खा जाओ महाराज।"

"गम कैसे खा जायँ। हमारा आधा खेत पड़ा है। तुम्हीं न्याय करो हम आधा खेत पड़ा रहने दें ? तुम कहो तो पड़ा रहने दें।"

"अब हम यह कैसे कह दें। बाकी हम तो यह चाहते हैं कि झगड़ा न हो।"

"तो इन्हें समझाओ ठाकुर को, जिनकी आंखों में चर्बी छा गई है। इन्होंने इधर पैसा कर लिया है आदमी को आदमी नहीं समझते।"

"कोई आदमी भी तो हो, किसे समझें आदमी।"

"और सुनो ! हम इनकी नजर में आदमी ही नहीं हैं। सुन लिया ? इतने दिमाग चढ़े हुए हैं।"

"अच्छा तो अब हटते हो कि हमें हटाना पड़ेगा।"

"हम अपने आप हटेंगे नहीं ठाकुर ! तुम्हें जबरदस्ती हटाना हो हटा दो।"

"काटो पानी देखते क्या हो।"

ठाकुर के आदमी ज्योंही बढ़े त्योंही दुर्गाशङ्कर लपक कर कुलाबे के आगे लेट गया और ठाकुर से बोला—"दाऊ ! पानी काटना है तो पहले हमें खतम कर देओ !"

दुर्गाशङ्कर पानी से तर हो गया। ठाकुर ने कहा—"तुम हट जाओ बबुआ ! तुम से हमारी लड़ाई नहीं है, तुम्हारे बाप से है, तुम बीच में क्यों पड़ते हो।"

"दाऊ ! उसी खेत से हमारी रोटी भी चलती है। सो हम तो पानी काटने नहीं देंगे। हमें मार डालो। तुम्हीं ने हमें पाल पोस कर बड़ा किया है, तुम्हारे हाथ से ही मरें तो अच्छा है। दाई अम्मा नहीं रहीं इससे दाऊ तुम चाहे जो करो। वह आज जिन्दा होतीं तो हमें ऐसे न मर जाने देतीं। जिसे उन्होंने दूध-मलाई खिला-खिला कर पाला उसे कोई टेढ़ी आंख देख लेता, यह वह कभी बरदाश्त न करतीं।"

ठाकुर का कंठ गद्गद् हो गया। वह बोला "बबुआ ! आगे वह कुछ न कह सका, उसका कंठ रुक गया। शिवशंकर आश्चर्य से ठाकुर के मुख को देख रहा था। सहसा वह पुत्र से बोला—"अरे क्यों भीग रहा

है, बीमार पड़ जायगा। उठ ! खेत जाय ऐसी-तैसी में चल घर सूखे कपड़े पहन !"

"अब तो जब दाऊ का हुकुम होगा तभी हम उठेंगे नहीं तो दाई-अम्मा के पास जाकर उनसे फरियाद करेंगे कि तुमने जिसे पाल पोस कर बड़ा किया दाऊ ने उसके प्राण ले लिये।"

ठाकुर आँखों में आँसू भर लाया। उसने दौड़ कर दुर्गाशंकर को गोद में उठा लिया और कहा—"नहीं बबुआ ! उसके पाले-पोसे को हम इस तरह नहीं मरने देंगे। चलो ! हम पानी नहीं काटेंगे। जब तुम्हारा खेत हो जायगा तब हम लगा लेंगे।"

गाँव भर में दुर्गाशंकर की प्रशंसा हो रही थी, उसने किस खूबी के साथ मामला निबटा दिया। ठाकुर प्रहलादसिंह बात पड़ने पर लोगों से कहता था—"लौंडे की बुद्धि तो देखो, ऐसी बात कही कि हमारा कलेजा हिल गया। नहीं तो उस दिन जरूर फौजदारी हो जाती।"

"क्या सचमुच इसे आपकी ठकुराइन ने पाला था ?"

"पाला तो खैर क्या था पर वह इसकी खातिर बहुत करती थीं। जब कभी आजाता था तो बिना कुछ खिलाये-पिलाये नहीं जाने देती थीं।"

"इसी को वह पालन-पोसन कहता है ?

"हां ! और इसी बात पर मैं मर गया कि थोड़ी सी बात को यह इतनी बड़ी बात मानता है। लड़का होनहार है। उसने हमारा चित्त प्रसन्न कर दिया।"

अध्यापक की भूल

(१)

पण्डित भोलादत्त पाण्डेय एम० ए० शारदा हाई स्कूल के सेकेण्ड मास्टर नियुक्त होकर आये। पं० भोलादत्त अभी एक प्रकार से नवयुवक ही थे। उनकी वयस २५, २६ वर्ष के लगभग थी। कालेज से निकले हुए रँगरूट थे, उन्हें अभी साधारणतया संसार का विशेषतः अध्यापकी का समुचित ज्ञान न था। वह देहात के रहने वाले थे। अतएव उनका देहातीपन कभी कभी सुशिक्षा की पालिश के भीतर से भी झलक जाता था।

जिस दिन वह पहले पहल स्कूल लीविङ्ग क्लास को पढ़ाने गये उसी दिन क्लास के लड़कों ने उन्हें बहुत बनाया। उक्त क्लास में कोई लड़का ऐसा न था जिसकी वयस १६ वर्ष से कम हो। बीस, बाईस वर्ष के तो अनेक थे। उसी दिन पाण्डेय जी ने यह निश्चय किया कि इस क्लास में अध्यापकी रोबदाब जमाने से काम न चलेगा। उनके पाश्चात्य शिक्षापूर्ण मस्तिष्क ने झट यह निर्णय कर दिया कि इस क्लास

के लड़कों से मित्रता का व्यवहार रखने में ही कुशल है। पाण्डेय जी की यह पहली भूल थी।

दूसरे दिन उन्होंने क्लास में पहुँचते ही एक छोटा-सा व्याख्यान दिया, जिसका आशय यह था कि—तुम सब ऊँची क्लास के लड़के हो और यथेष्ट बुद्धिमान तथा समझदार हो। तुम में से अनेक मेरे समवयस्क हैं, अतएव मैं तुम लोगों से गुरु-शिष्य का व्यवहार रखना उचित नहीं समझता। कालेज-जीवन में मुझे यह अनुभव प्राप्त हुआ है कि जितना अच्छा कार्य मित्रता के व्यवहार से होता है उतना गुरु-शिष्य के व्यवहार से नही होता। इसलिए आज से मैं तुम सब से मित्रता का व्यवहार करूँगा। तुम लोगों से मैं यही आशा करता हूं कि तुम लोग भी व्यवहार का अनुकरण करके मेरे साथ भी मित्रता का व्यवहार करोगे। इस पर लड़कों ने हर्ष से तालियाँ बजाईं। पाण्डेय जी ने मन ही मन प्रसन्न होकर सोचा—"बस पाला मार लिया, आज से ये सब मेरे अनुकूल हो गये।" पाण्डेय जी की यह दूसरी भूल थी।

पाण्डेय जी का पीरियड (घन्टा) लड़कों के लिए छुट्टी का पीरियड हो गया। लड़के जिस दिन इच्छा होती पढ़ते, जिस दिन इच्छा न होती न पढ़ते, पाडेय जी गप शप करते क्लास में आये, आते ही कुर्सी पर बैठे। और झट पुस्तक खोली। इधर उन्होंने पुस्तक खोली उधर एक लड़का बोल उठा—"अजी हटाइये भी कहाँ का झगड़ा—आज तो गप्पें लड़ाने को जी चाहता है। हाँ आप जरा अपने कालेज-जीवन के कुछ चुटकुले सुनाइये।" पाण्डेय जी भृकुटी चढ़ाकर बोले—"नहीं, यह ठीक नहीं, पहले—"

दूसरा लड़का बोल उठा—"यह भौंहें चढ़ाने की बात गलत है। मित्रता के व्यवहार में यह बात न होनी चाहिये। हँस कर बातें कीजिए।" इस बात पर पाण्डेय जी को विवश होकर मुस्कराना पड़ता था, परन्तु भीतर से उनका मन कुढ़ कर रह जाता। अब पाण्डेय जी

लाख चाहते हैं कि लड़के पढ़ें परन्तु लड़के पुस्तक ही नहीं खोलते। जब पाण्डेयजी खुशामद करके समझा-बुझाकर परीक्षा में अनुत्तीर्ण हो जाने की बात कहकर हार जाते तब कहते–"अच्छा आज तो मैं तुम लोगों का कहना माने लेता हूँ—कल से तुम्हें नित्य पढ़ना पढ़ेगा।" इतना कहकर पाण्डेय जी उन्हें अपने कालेज-जीवन के अनुभव सुनाने लगते। यह पाण्डेय जी की तीसरी भूल थी।

पाण्डेय जी का परिवार देहात में रहता था, अतएव पाण्डेय जी अकेले ही शहर में रहते थे। वह स्कूल के पास ही एक छोटा-सा मकान लिये हुए थे। एक नौकर रख लिया था, कट्टर कान्यकुब्ज होने के कारण भोजन अपने हाथ से बनाते थे।

थोड़े ही दिनों में मास्टर साहब का घर लड़कों का अड्डा बन गया। स्कूल-समय के एक एक घण्टा पूर्व लड़के मास्टर साहब के कमरे में आ डटते थे। मास्टर साहब का घर स्कूल के मार्ग में और उसके निकट था। अतएव लडकों को ऐसा करने में कठिनता न पड़ती थी।

स्कूल के मार्ग में और स्कूल के निकट घर लेकर पाण्डेय जी ने चौथी भूल की थी।

(२)

सबेरे नौ बज चुके थे। आज पाण्डेय जी ने बड़े परिश्रम तथा बड़ी रुचि के साथ माँस पकाया था। पाण्डेय जी माँस के बड़े प्रेमी थे और बहुधा माँस खाया करते थे। उनका नौकर कहीं काम से गया हुआ था। पाण्डेय जी ने सोचा, चलो थोड़ा दही ले आवें। वह दही लेने निकले, उसी समय तीन लड़के पुस्तकें दाबे हुए द्वार पर ही मिले। उन्हें देख कर पाण्डेय जी ने मुस्कराकर कहा—"तुम लोग अच्छे आगये। घर अकेला है। चलो ऊपर चल के बैठो—मैं जरा लपक कर दही ले आऊँ।" उनमें से एक बोला "लाइये मैं ला दूँ।"

पाण्डेय जी बोले—"नहीं मैं ही चला जाऊँगा तुम लोग ऊपर चल के बैठो।"

लड़कों ने कहा—"अच्छी बात है ले आइये। और आप को कष्ट तो होगा—एक चार पैसे के पान भी लगवाते लाइयेगा।" पाण्डेय जी तो उधर दही और पान खरीदने चले। इधर लड़के जो ऊपर पहुँचे तो जीने पर ही से मांस की गन्ध आई। इनमें से दो लड़के मांसाहारी थे। उनमें से एक बोला—"आज तो पंडवा ने हंडिया पकाई है यार" यह कहते हुए ऊपर पहुँचे। एक ने कमरे में से रसोई-घर की ओर झाँककर देखा। एक ओर रोटियों की थई रक्खी थी और उसके पास ही माँस की डेगची। लड़कों में से एक बोला—"यार बेनी-क्या इरादे हैं?"

बेनी—"अच्छा! तो फिर लाओ।"

यह सुनते ही चन्दन झट चौके के अन्दर घुस गया और एक कटोरे में सारा माँस उँडेल लाया—केवल दो तीन हड्डियाँ डेगची में छोड़ दीं। कटोरा बाहर लाकर दोनों ने जल्दी जल्दी थोड़ा बहुत खाया और शेष बाहर सड़क की नाली में फेंक दिया। इसके पश्चात चन्दन ने झट कटोरा धो धाकर चौके में रख दिया। इसके कुछ क्षणों पश्चात ही पाण्डेय जी का नौकर आ गया। नौकर ने आते ही इधर-उधर देख कर पूछा—"मास्टर जी कहाँ गये?"

चन्दन ने लापरवाही से उत्तर दिया—"दही लेने गये हैं, यहां सब खाली पड़ा था, जब हम आये तो एक बड़ा-सा बिल्ला डेगची में जुटा कुछ खा रहा था। हमने उसे भगाया पता नहीं क्या खा रहा था।"

नौकर बोला—"अरे दादा-जान परत है कलिया खाय गवा।"

इसी समय पाण्डेय जी आ गये और यह हाल सुन कर बौखलाये हुए चौके की ओर गये और झट डेगची देखी। देखा तो दो-तीन हड्डी और थोड़ा शोरवा पड़ा है।

पाण्डेय जी बोले—"बड़े आश्चर्य की बात है—बिल्ली कैसे आई—

पता तक न लगा।"

नौकर बोला—"बिलेवा छिनार कुछ झाँझै पहिरे रहै जो सुनाई परत।"

यह सुनते ही चन्दन बोला—"ठीक बात है—बिल्ली का आना तो जान ही नहीं पड़ता।"

पाण्डेय जी बोले—"क्या बतावें, इतने परिश्रम से बनाया था—सब बेकार गया।"

चन्दन—"तो क्या बिलकुल सफाचट कर गया ?"

पाण्डेय जी—"हां, था ही कितना, पावभर तो था ही-और छोड़ा भी हो तो उसका जूठा कौन खाय। बड़ा अफसोस हुआ—कितनी मेहनत से बनाया था।"

चन्दन—"वह बिल्ली मिल जाय तो अब की उसे ही पका कर खा डालियेगा।"

यह सुनते ही पाण्डेय जी हँस पड़े। बोले—"तुम लोग मजाक करते हो। मेरा कलेजा जल रहा है। इस समय उसे पाऊँ तो कच्चा ही खा जाऊँ।"

(३)

६ मास के अन्दर ही लड़कों ने पाण्डेय जी को नाकों चने चबवा दिए। उनके घर में अक्सर ऊधम मचा रहता था। स्कूल से छुट्टी होने के पश्चात घर जाते समय नित्य कुछ लड़के पाण्डेय जी के घर पर अपनी यात्रा स्थगित कर देते थे और बिना चाय पिये और पान खाये टलते न थे। छुट्टी के दिन तो मास्टर जी के मकान पर दिन भर धमा चौकड़ी रहती थी। पहले तो मास्टर जी ने सोचा था—अच्छा है, दिल बहलता है। परन्तु जब इससे पाण्डेय जी का खर्च भी बढ़ गया और लड़के दिन प्रति दिन अधिक धृष्ट होने लगे तो उन्हें चेत हुआ।

क्लास में यह दशा थी कि उनके पीरियड में लड़के सैर करने चले जाते थे, पाण्डेय जी चाहते थे लड़के पढ़ें, पर लड़के सोचते कि पाण्डेय जी के पीरियड ही में तो थोड़ा आराम मिलता है। घर के लिए जो काम दिया जाता उसे भी लड़के इच्छा होती तो कर लाते अन्यथा साफ टाल जाते थे। अब पाण्डेय जी ने सोचा कि यदि सख्ती से काम न लिया जायगा तो लौंडों के कारण नौकरी से भी हाथ धोना पड़ेगा। अतएव उन्होंने एक दम से अपना व्यवहार बदल दिया। यह पांडेय जी की पाँचवी भूल थी।

एक दिन आप क्लास में आये तो भौंहें चढ़ाए हुए। आते ही बिना किसी से बोले-चाले झट जाकर बैठ गये। एक लड़के ने कहा—"मास्टर जी! आज तो जी चाहता है कि कुछ देश के सम्बन्ध की बातचीत हो।"

पाँडेय जी ने छूटते ही कहा—"तुम खड़े हो जाओ। पीरियड भर खड़े रहो।"

लड़के ने कहा—"वाह! मास्टर जी ऐसी कहिएगा। आज आप इतने नाराज क्यों हैं?"

पाण्डेय जी अधिक कर्कश होकर बोले–'खड़े हो! ज्यादा बातें मत करो।"

स्कूल का मामला था—पाँडेय जी लाख कुछ हों, पर अध्यापक ही थे। अतएव वह लड़का चुपचाप बैंच पर खड़ा हो गया।

पाँडेय जी बोले–"बस, तुम लोगों से यही व्यवहार ठीक है। मैंने तो सोचा था कि तुम लोगों से मित्रता का व्यवहार रक्खूं पर तुम लोग उसके पात्र नहीं हो।"

उस दिन स्कूल के पश्चात लड़कों में मिसकौट हुई। एक ने कहा– "यारो यह पंडवा तो अब गिरगिट की तरह रंग बदल रहा है। इसका इलाज होना चाहिए।"

दूसरा—"इलाज क्या, किसी दिन अंधेरे उँजाले पीट दो। पहले तो दोस्ती गाँठी अब रौब जमाना चाहता है। यह नहीं होगा।"

इस पर बड़ी देर तक वादविवाद होता रहा। अन्त में यह तय हुआ कि पहले एक बार चेतावनी दे देनी चाहिये।

यह परामर्श होने पर उसी दिन पाण्डेय जी के नाम एक गुमनाम पत्र लिखा गया। उसमें लिखा था—"क्यों जी पहले तो तुमने हम लोगों से दोस्ती का व्यवहार किया। परन्तु दोस्ती निभाना कठिन निकला। आखिर देहाती थे। शहर वालों की मित्रता का भार कैसे उठाते? भाग निकले। खैर कोई चिन्ता नहीं! परन्तु अब जो तुम रौब जमाना चाहो सो कठिन है इसलिए सीधी तरह रहो, अधिक गड़बड़ करोगे तो किसी दिन चौराहे पर कंबल डालकर इतने बे भाव लगाये जायंगे कि जन्म भर याद करोगे।',

यह पत्र जब पाण्डेय को प्राप्त हुआ तो वह घबराए। कहर में अकेले रहते थे अतएव उन्होंने सोचा लड़कों के लिए ऐसा कर देना कुछ आश्चर्य की बात नहीं।

आपने सोचा इसकी सूचना स्कूल के उच्च अधिकारियों को दे देनी चाहिए। पहले आपने हैडमास्टर को वह पत्र दिखाया। हैडमास्टर ने कहा—"आप किन्हीं एक दो लड़कों को बताइये और प्रमाण दीजिए कि यह पत्र उन्हीं का लिखा हुआ है तो मैं रेस्टीकेट कर दूँ। गुमनाम पत्र का यों भी कोई मूल्य नहीं। आप इतना घबराते क्यों हैं? यह सब कोरी धमकी है—आपका कोई बाल बाँका नहीं कर सकता!"

परन्तु पांडेय जी को इससे सन्तोष न हुआ। वह सेक्रेटरी के पास दौड़े गये। परन्तु वहाँ से भी वही उत्तर मिला, जो हेडमास्टर ने दिया।

अन्त में विवश होकर पाँडेय जी ने सोचा—"अब लड़कों से नम्रता का व्यवहार करने में ही कुशल है।" यह पाँडेय जी की छठी भूल थी।

दूसरे दिन क्लास में आकर पहले पाँडेय जी ने कहा—"मुझे कल

एक पत्र मिला है। यह पत्र तुम लोगों का ही लिखा हुआ है। बड़े अफसोस की बात है कि तुम लोग मुझसे—अपने गुरु से—ऐसा नीच व्यवहार करते हो। मैंने चाहा कि मित्रता का व्यवहार रक्खूं उसका तुम लोगों ने दुरुपयोग किया। मैंने सोचा इस प्रकार मेरी बदनामी हो जायगी। तुम लोग कुछ पढ़ते लिखते न थे। यही सोच कर उस दिन मुझे क्रोध आगया और मैंने राधाचरण को खड़ा कर दिया था। परन्तु मेरा ईश्वर जानता है कि मेरी नीयत में कोई फर्क नहीं। मैं तुम लोगों से स्नेह करता हूँ।"

इतना कहते कहते पाँडेय जी का गला भर आया और आँखों में आँसू भर आये।

एक लड़के ने खखार कर कहा—"माफ कर दो, रो दिया है।"

पाँडेय जी ने सुना, पर टाल गये। अन्त में लड़कों ने भी लोक व्यवहार की बातें कह कर पाँडेय जी को शान्त कर दिया। उस दिन से पुनः वही मित्रता का व्यवहार होने लगा।

पाँडेय जी ने देखा कि अब यहाँ किसी भी व्यवहार से काम ठीक न होगा। जिसका आरम्भ बिगड़ गया उसका सब बिगड़ा। अतएव थोड़े दिन पश्चात ही पाण्डेय जी ने चेष्टा करके दूसरे नगर में अध्यापकी करली और उस स्कूल को छोड़ दिया।

अब आजकल पाण्डेय जी नये अध्यापकों को यह शिक्षा दिया करते हैं कि लड़कों से सदैव अध्यापकोचित व्यवहार ही रखना चाहिए। कभी भूल कर भी उनसे मित्रता का व्यवहार न रखना चाहिए।

मुंशी जी का ब्याह

मुन्शी ईश्वरसहाय कायस्थ हैं। वयस ५६-५७ वर्ष के लगभग है। अपने परिवार में यही सबसे दीर्घजीवी प्रमाणित हुए। अब इनके अतिरिक्त इनके घर में केवल चूहे ही चूहे रह गये हैं। परन्तु वे कम्बख्त भी सब इस नये जमाने के हैं। मुन्शी जी के समय के चूहों में से तो कदाचित अब एक भी नहीं रहे।

मुन्शी जी एक डाकखाने के द्वार पर बैठते हैं और चिट्ठी-पोस्ट काड लिखकर अपनी जीविकोपार्जन करते हैं। ये बड़े रसिक हैं। इनके मुहल्ले में कदाचित ही कोई ऐसा व्यक्ति होगा जिससे मुंशी जी की हंसी-दिल्लगी न होती हो। इनका हुलिया ही कुछ ऐसा बन गया है कि गम्भीर आदमी का चित्त भी इनसे मजाक करने के लिए चलायमान हो उठता है। इसके अतिरिक्त इनमें बुद्धि की भी कुछ कमी है। जब कोई स्त्री अपने पति को चिट्ठी लिखाने के लिए इनके पास आती है तब इनकी रसिकता देखने योग्य होती है। उससे मुस्करा-मुस्कराकर सब हाल पूछते हैं, उसे सलाह देते हैं कि ऐसे लिखाओ, स्वयं भी अपनी

ओर से कुछ प्रेम की बातें लिख देते हैं।

फाल्गुन मास का आरम्भ हुआ था। मुन्शी जी अपने द्वार पर बैठे नारियल पी रहे थे। इसी समय दो युवक उधर से निकले। एक का नाम दयाशङ्कर तथा दूसरे का राजनलाल था।

दयाशङ्कर मुंशी जी को देखकर बोला—'मुंशीजी, फागुन आ गया।''

मुंशी बोले—'आ गया होगा—हमसे क्या?'

'फागुन मस्त महीना है, मुंशीजी!'

'मस्त है जोरूवालों के लिए—हमारे जोरू न जाता अल्ला मियाँ से नाता।'

'हम तो आपसे कहते हैं कि ब्याह करलें पर आप कुछ ध्यान ही नहीं देते।'

'तुम लोग करते हो दिल्लगी। ध्यान क्या पत्थर दें। कोई ठिकाने की बात कहो तो ध्यान भी दें।'

'भगवान जाने यदि ब्याह करने को तैयार हों तो हम जोड़-तोड़ लगावें।'

'लगाया है! जबानी जमा-खर्च करते हो, करते-धरते कुछ बनता नहीं।'

'वादा कीजिए! ऐसा न हो कि हम बातचीत लगावें और ऐन मौके पर आप नट जायं।' राजनलाल ने कहा।

''अमाँ रहने भी दो। बातचीत लगाओगे अपना सिर!'

'हम तो मिनटों में सब तय कर दें; पर आपका भी तो कुछ ठीक हो। उलटे हमी उल्लू बन जायँ। ब्याह कर लें तो रोटी-पानी का सुख हो जाय।'

'रोटी-पानी का क्या—सभी सुविधाएँ हो जायँ। घर में कोई बात पूछने वाला तक नहीं है। चार दिन बुखार में पड़े रहे किसी ने पानी

तक को न पूछा।'

'यही तो हम भी कहते हैं। ये सब दुःख दूर हो जायँगे।'

'परन्तु भाई इस उम्र में ब्याह करना हँसी कराना है।'

'ज्यादा उम्र वाली विधवा से ब्याह करें तो हँसी नहीं होगी मुंशीजी !'

'लेकिन ऐसी विधवा मिलेगी कहां ?"

'हम ढूँढ़ निकालेंगे।'

'अमां जाओ, कोरीं बातें ही बातें हैं।'

'विधवा से आप ब्याह करेंगे, पहिले यह बताइये।'

'देखो भई, मैं हवाई बातें करना पसन्द नहीं करता। जब चीज सामने आवे तब बातें करूँ।'

'अच्छी बात है। यही सही।'

यह कह कर दोनों चल दिए। कुछ आगे बढ़कर राजनलाल बोला-'मुन्शीजी को अभी ब्याह की हविस है।'

'बड़े रसिया है ! और अगर कोई मिले तो यह कर भी लें।'

'तो करवाना चाहिए।'

'इनसे ब्याह करने को तैयार कौन होगी ?'

'अमाँ दिल्लगी ही सही। फागुन का महीना है—कुछ रङ्ग तो रहना ही चाहिये।"

'हां, यह हो सकता है, तुमने बहुत ठीक बात सोची। इस बार मुंशीजी का ब्याह होना चाहिए।'

'अवश्य होना चाहिये।'

'तो और लोगों से सलाह करके काम शुरू कर देना चाहिये।'

'दो-एक बुढ्ढे जब तक इसमें शामिल न होंगे तब तक मंशीजी पतियायेंगे नहीं।

'सो तो हो जायेंगे। दरबारीलाल—तुम जानते हो—एक ही दिल्लगीबाज़ हैं—वह हो जायेंगे और पण्डित आशाराम।'

'उनसे पहले पूछ लेना चाहिये।'

'अच्छी बात है। कल सब ठीक-ठीक कर लेंगे।'

* * *

दूसरे दिन इन दोनों ने मुहल्ले के युवकों तथा दरबारीलाल और आशाराम से परामर्श किया। सब लोग यह समाचार पाकर प्रसन्न हुए और उन्होंने इस कार्य में पूरा सहयोग देने का वचन भी दिया।

एक दिन दोनों मुन्शीजी से मिले।

'लीजिए, आपके लिए एक विधवा ढूँढ़ ही निकाली।'

'मुन्शीजी अविश्वास की मुद्रा बनाकर बोले—'जरूर तुम्हारी रिश्तेदार होगी!'

''बस, आपकी यही बातें बुरी लगती हैं। हमने तो आपके लिए न जाने कहाँ से जोड़-तोड़ लगाया और आप उलटी-पलटी बात करते हैं।'

'अच्छा! खफा मत हो! कहाँ ढूँढ़ निकाली?'

'देहात में मुंशीजी! इतना ही मामला गड़बड़ है।'

'इसमें गड़बड़ क्या है, देहात में ही सही। जब हमारे पास रहेगी तब यहाँ रहेगी।'

'यही तो झगड़ा है। वह यहाँ आकर नहीं रहेगी—आपको उसके पास देहात में रहना होगा।'

'मैं देहात में मरने को क्यों जाने लगा। वहाँ जीविका कैसे चलेगी?'

'सो तो विधवा मालदार है।'

'अच्छा, कितना माल है?'

'यह तो हम ठीक बता नहीं सकते, पर वह आपको आराम से खिला-पिला सकती है।'

'हूँ हूँ ! इतना ही हम चाहते हैं, और हमें क्या करना है। कुछ जमीन वमीन है ?'

'उसके पास ढाई बीघे जमीन है !'

'ढाई बीघे में क्या होगा ?'

'ज़मीन कैसी है, यह तो पहले सोचिये। काश्मीर में जिस जमीन में केसर होती है वह भी बहुत थोड़ी है, पर लाखों रुपये देती है।'

'यही तो मैं जानना चाहता हूँ कि उस ढाई बीघे में क्या पैदावार होती है ?'

'गाँव ऊपर ! दस-बारह मन फी बीघा हिसाब बैठता है। गांव वाले उस जमीन का २५-३० रुपये बीघा लगान देने को तैयार हैं।'

'तब तो काफी है।'

'हाँ, यही तो बात है।'

'अच्छा, और ?'

'एक जोड़ी बैल है—उनमें एक भैंसा है, दूसरा बैल—दोनों बैल नहीं हैं।'

''वाह ! बैल एक ही।'

'तो हर्ज क्या है, काम तो चलता ही है। एक बैल तो है ही, दूसरे आप पहुँच जायंगे।'

'क्या मतलब ?' मुन्शीजी ने चौकन्ना होकर पूछा।

मतलब यह कि एक बैल है, जब आप पहुँच जायेंगे तो दूसरे बैल का प्रबन्ध कर लेंगे। उसके कोई करने-धरने वाला नहीं है।'

'हाँ, यह ठीक है। मैंने कुछ और ही समझा था। अच्छा, और ?'

'एक बकरा है।'

'बकरा है या बकरी ?'

'बकरा।'

'बकरा क्यों पाला ? इसमें क्या तुक है ?'

'उस बकरे से बड़ी आमदनी है मुन्शी जी !'

'वह कैसे ?'

'वह बकरा बड़ी अच्छी नस्ल का है। उससे अपनी बकरी से बच्चे पैदा कराने के लिए लोग उसे किराये पर ले जाते हैं। इस किराये से विधवा को आमदनी होती है।'

'भला कितनी आमदनी हो जाती होगी ?'

'दस आने, साढ़े दस आने, पौने ग्यारह आने तक आमदनी हो जाती है।'

'रोज या महीने में ?'

'रोज ! महीने का क्या हिसाब ?'

'हूँ ! अपना घर भी होगा ?'

'वह तो है ही ! देहात में कहीं किराये के घर होते हैं ?'

'कोई गाय-भैंस नहीं ?'

'जब आप पहुंच जायें तब रख लीजियेगा, उसके कोई करने-धरने वाला नहीं है।'

'नाम क्या है ?'

'महरजिया। देहात में ऐसे ही नाम होते हैं।'

'नाम बदलना पड़ेगा—कोई बढ़िया नाम रखेंगे और एक भैंस रखेंगे; देहात में घी-दूध का ही तो मजा है। और ?'

''और क्या ? इतना थोड़ा है ?' बाकी उसके पास जो नकद रुपया होगा उसका किसी को क्या पता। परन्तु होगा कुछ जरूर।'

'अच्छा उम्र क्या है ?'

'उम्र होगी कोई पचास के लगभग।'

'ऐं' मुन्शीजी ने चौंक कर पूछा।

'हाँ ! इतनी ही होगी—इससे अधिक नहीं।

'तो यह क्या कम है ?'

'आपसे आठ दस बरस छोटी है, यह मत भूलिये।'

'हाँ—आँ, यह तो ठीक है लेकिन—।'

'लेकिन-वेकिन कुछ नहीं। आपसे कोई सोलह बरस की युवती ब्याह नहीं करेगी और न शायद आप ही तैयार होंगे।'

'सो तो ठीक है। पर चालीस तक होती तो अच्छा था।'

'आपको तो आराम चाहिये। वह पचास की सही, आपकी सेवा तो करेगी। खूब हट्टी-कट्टी है। पचास की जान नहीं पड़ती।'

'तब ठीक है।'

'तो बातचीत पक्की करें?'

'समझ लो। मुहल्ले के चार बड़े-बूढ़ों-से पूछ लो, पीछे कोई नाम न धरे।'

'आप तो जा बैठेंगे देहात में, पीछे कोई झख मारे तो मारने दीजिये।'

'यह तो ठीक है, तब भी चार आदमियों से सलाह ले लेना अच्छा होता है।'

'सो तो ठीक है; पर पूछने में पूँछ लग जाती है। लाला दरबारी-लाल और पण्डित आशाराम से पूछ लो। ये दोनों ठीक सलाह देंगे। और किसी से पूछोगे तो वह दिल्लगी उड़ायेगा और सारा मामला बिगड़ जायगा।'

'अच्छी बात है।'

दूसरे दिन दरबारीलाल और आशाराम मुन्शी जी से मिले। दर-बारीलाल बोले—'दयाशङ्कर ने कहा था कि मुन्शीजी आपको और पण्डितजी को पूछते थे, सो हम लोगों ने सोचा कि आपसे हमीं मिल लें। क्या बात है?'

'बात यह है लाला—पण्डितजी आप भी सुनिये—मुहल्ले के कुछ लोग मेरे पीछे पड़े हैं; कहते हैं ब्याह कर लो। वैसे तो अब इस उम्र में ब्याह करना कोई अच्छी बात नहीं है। लेकिन अकेले तकलीफ होती

है—बीमार पड़ जाते हैं तो कोई पानी देने वाला नहीं होता। रोटी-पानी की भी तकलीफ है। रोटी बनाने की इच्छा नहीं होती। कभी बाजार से खा लिया, कभी खिचड़ी डाल लो—समय-कुसमय खाना पड़ता है। यही सब कष्ट है।'

'एक औरत तो घर में जरूर चाहिये मुन्शीजी !'

'यही तो मैं भी सोचता हूँ। दयाशङ्कर और राजनलाल ने कहीं बातचीत लगायी है।'

यह कह कर मुन्शीजी ने सब ब्योरा बता दिया। दोनों व्यक्ति बोले—'ठीक तो है, बेजा क्या है। बुढ़ापा आराम से कटेगा।'

'तो आप लोगों की सलाह है ?'

'सोलहो आने ! और मुन्शीजी, आप अपना स्वार्थ आराम देखिए, सलाह बलाह लेने के फेर में मत पड़िए। जितनों से पूछिएगा उतनी तरह की सलाह मिलेगी।'

'यह बात आपने ठीक कही। अच्छा, एक बात यह तो कीजिये, जरा पता लगा लाइये कि क्या ये दोनों लौंडे ठीक कहते हैं। कोई जाल फरेब तो नहीं है ?'

'हम पता लगा लेंगे।'

'तो कब बताइयेगा ?'

'दो-एक दिन में बता देंगे।'

चौथे दिन दोनों मुन्शीजी से मिले। आशाराम बोले—'बात तो ठीक है, जालफरेब नहीं है।'

'तो बस फिर ठीक है।'

दयाशङ्कर आदि ने मुन्शीजी को ब्याह-के लिए पूरे तौर से तैयार कर लिया और एक दिन मुन्शीजी को खबर दी—'ब्याह पक्का हो गया। फागुन सुदी दशमी की लग्न निकलती है।'

'अब यह सब तुम जानो। मेरी ओर से तुम्हें सब तरह का अधि-

कार है।' मुन्शीजी बड़े प्यार से बोले।

'तो बस यही तिथि निश्चित रही।'

'टीका वीका तो आयेगा ही।'

'अरे मुन्शीजी! टीका सगाई कुँवारों का आता है। हमने मना भी करवा दिया है। टीका-सगाई आने से लोगों में चखचख मच जायगी। आप तो चुप के से ब्याह कर लाइये—फिर लोग जान भी जायंगे तो कुछ न कर सकेंगे।

'जब वहीं रहना है तब यहाँ आकर क्या करेंगे? ब्याह करके वहीं रह जायँगे। क्या सलाह है?'

'यह भी ठीक है। व्याह करने चले तो यहाँ से सब नाता तोड़कर चलें।'

'यही सोच रहा हूँ।'

'बिल्कुल ठीक सोच रहे हैं।'

'अच्छा, यहाँ की रस्में कौन करेगा?'

'रस्म-बस्म कुछ नहीं आर्य समाजी ढङ्ग से ब्याह होगा। बस यहाँ से चले चलेंगे, वहां हवन करके चटपट ब्याह हो जायगा।'

'वाह वा! यही तो हम चाहते थे। बस, ऐसा ही हिसाब रखना।'

'वह सब हम पहले ही सोच चुके हैं मुन्शीजी! क्या हमें नहीं मालूम कि आपके यहाँ कोई करने-धरने वाला नहीं है?'

'वाह बेटा! तुम लोगों को कुछ समझाना है क्या! तुम्हें सब मालूम ही है।'

\+ \+ \+

मुन्शीजी बड़े प्रसन्न थे। सोचते थे कि अब बुढ़ापा आराम से कटेगा। इधर यार लोगों ने पूरा षडयन्त्र रच डाला। दरबारीलाल तथा आशाराम यद्यपि वृद्ध हो चले थे फिर भी ऐसे हँसी-मजाक में उनको बड़ा आनन्द आता था और वे बड़े उत्साह से ऐसी बातों में योग

देते थे।

मुन्शीजी ने दयाशङ्कर से सलाह ली—'क्यों भई, मकान तो छोड़ देना चाहिए, गिरस्ती का सामान सब वहां पहुँच जायगा।'

'मकान अभी न छोड़िए। गृहस्थी का सामान ब्याह के बाद आदमी भेजकर मँगा लीजिएगा। उसकी फेहरिस्त बना लीजिए—बस। हम लोग सब संभलवा देंगे—उसी समय मकान छोड़ दीजिएगा।'

मुन्शी जी को भी यह बात जँच गई—दशमी के दिन दयाशङ्कर तथा राजनलाल मुन्शीजी को लेकर ब्याहने चले। स्टेशन पर मुन्शी जी ने पूछा—'और बराती कहाँ हैं?—दरबारीलाल, आशाराम, मेवा-लाल, श्यामसुन्दर ये सब तो दिखाई नहीं पड़ते।'

'घबराइए नहीं—दोपहर की गाड़ी से सब पहुँच जायँगे। हमने सबसे वचन ले लिया है।'

'तब ठीक है।'

एक स्टेशन छोड़कर तीसरे स्टेशन पर गाड़ी रुकी। ये दोनों मुंशी जी को लेकर उतरे। प्लेटफार्म पर तीन-चार काले-कलूटे देहाती हाथों में लठ लिए उपस्थित थे। दयाशंकर ने बताया कि ये बरात को लेने आये हैं।'

मुंशी जी ने पूछा—'ये लोग कौन हैं?'

'उसी के कोई दूर के रिश्तेदार हैं।'

'लेकिन ये तो कायस्थ नहीं मालूम पड़ते।'

'कायस्थ हैं कब जो मालूम दें।'

'तब फिर कौन हैं?'—मुंशीजी घबराये हुए स्वर में बोले।

'गड़रिये हैं।'

'और मुसम्मात जिससे हमारा ब्याह होगा?'

'वह भी गड़ेरिन है।'

'ऐं! क्या बकते हो? मैं गड़ेरिन से ब्याह करूँगा?'

'तो पहले क्यों न कह दिया ?'

'अरे ! तो मैं क्या जानता था कि गड़ेरिन है। मैंने समझा कायस्थ होगी। ऐसी बात पूछने की जरूरत ही क्या थी ? सम्बन्ध तो अपनी जाति में ही होता है।'

'खैर, अब तो जो हो गया सो हो गया।'

'हो क्या पत्थर गया, मैं गड़ेरिन से कभी ब्याह न करूंगा। वाह ! मुझे ऐसी जरूरत नहीं है कि कोरिन, चमारिन, गड़ेरिन कोई भी हो, ब्याह कर लूँ।'

'अच्छा तो एक काम कीजिये। इनकी आँख बचाकर निकल चलिये। ये लोग जान पायेंगे तो मारते मारते भूसा बना देंगे—बड़े जल्लाद हैं ये लोग।'

यह सुनते ही मुन्शी जी के देवता कूच कर गये। घबराकर बोले—'भई, किसी तरह हमें निकाल ले चलो। हम बाज आये ऐसे ब्याह से।'

'तो एक काम कीजिए। हम यहाँ खड़े हैं। आप पेशाब के बहाने उधर निकल जाइए और वहाँ कहीं छिप रहिए। हम इन्हें बातों में लगाये रहेंगे और मौका पाकर आ जायेंगे।'

'इनको कैसे टालोगे ?'

'ये आपको पहचानते हैं तो हैं नहीं। कह देंगे कि दोपहर की गाड़ी से आयेंगे; इस गाड़ी से नहीं आ सके—हम लोग यही खबर देने आये हैं।'

'वाह वा ! फस्ट क्लास ! बस यही तरकीब ठीक है।'

यह कह कर मुन्शीजी वहाँ से धीरे-धीरे खिसके। अपनी समझ में बड़ी होशियारी से निकल गए और लाइन फाँद कर दूसरी ओर एक खेत में घुस गये। मुन्शीजी एक घण्टा वहाँ छिपे रहे। इसी बीच एक गाड़ी शहर की ओर निकल गयी। मुन्शी जी ने उसे सतृष्ण नेत्रों से देखा।

सहसा एक व्यक्ति लठ लिए सिर पर आ पहुँचा। उसने पूछा—

'तुम कौन हो जी, यहाँ क्यों छिपे हो ?'

मुन्शीजी दांत निकाल कर बोले—"ऐसे ही आ गया था, अब जा रहा हूँ।'

'तुम कोई चोर मालूम होते हो।'

'नहीं भैया, मैं मुन्शी हूँ—पढ़ा लिखा हूँ—शहर में चिठ्ठी पत्री का काम करता हूँ। कभी आओ तो—के डाकखाने पर देख लेना—मैं हीं मिलूँगा।'

'तो यहाँ क्यों छिपे हो, यह बताओ !'

'अच्छा भाई, जाते हैं। तुम समझते हो छिपे हैं, मैं यों ही आ गया था।'

'यों ही आने वाले ऐसे छिप कर नहीं बैठते।'

मुन्शीजी चलने लगे तो उसने हाथ पकड़ लिया और कहा—'पहले इधर चलो थाने पर। रहते शहर में, यहाँ छिपने क्यों आये ?

'नहीं भैया, हम चोर नहीं हैं।'

'नहीं हो तो चलो, फिर क्यों डरते हो।, यह कहकर वह मुन्शीजी को घसीटता हुआ ले चला। मुन्शीजी रोने लगे।

'रोता क्यों है ?'

'भैया अब कभी नहीं आयेंगे—माफ करो। यकीन न हो तो हमारे साथ शहर चले चलो—किराया हम दे देंगे। वहाँ पता लगा लेना कि हम कौन हैं।'

वह आदमी कुछ सोच कर बोला—'अच्छा तो आओ अब कभी न दिखाई पड़ना।' यह कर उसने दो लप्पड़ मुन्शीजी के रसीद किये। मुन्शीजी गाल सहलाते हुए भागे।

दूसरी गाड़ी से घर वापस आये। अब बड़े नाराज ! दयाशङ्कर और राजनलाल को सैकड़ों गालियां ! 'कमीने गड़ेरिन से ब्याह कराने ले गए थे। हमें छोड़कर भाग आए।'

दयाशङ्कर ने कहा—'हमने तो बहुत ढूँढ़ा, आप न जाने कहाँ चले गए। हमारा क्या कसूर ?'

'हम तो दूसरी तरफ खेत में जा छिपे थे।'

'तो हमें यह क्या मालूम ! आप ही इन्साफ कीजिए। हम तो स्टेशन के आस पास ढ़ूँढ़ ढ़ूँढ़ कर परेशान हो गए। जब आप नहीं मिले तब लौट आये। और यह सब क्यों हुआ जानते हैं मुन्शी जी ?'

'क्यों हुआ ?'

'होलाष्टक में ब्याह करने गए थे। होलाष्टक में इसीलिए शुभ कार्य वर्जित है कि उसमें विघ्न अवश्य पड़ता है।'

'तो पहले ही सोच लेना था।'

'कुछ खयाल नहीं रहा। इन्सान से गलती हो ही जाती है।'

'अच्छी गलती हुई—यहां तो तुम्हारी गलती से हमारे सोलहो कर्म हो गए।'

'खैर माफ कीजिए मुन्शीजी ! हमने तो अच्छे के लिए किया था–हो गया उलटा। फिर बड़ी खैर हुई कि जान बच गयी।'

लोगों से मुन्शीजी कहते थे—'देखी इन लौंडों की बदमाशी ! गड़ेरिन से ब्याह कराये दे रहे थे। लेकिन मैं एक काइयां—ऐसे लौंडों के चकमे में आजाऊँ तो बस हो चुका। मैं स्टेशन पर देखते ही समझ गया कि कोई नीच जाति है। मैंने सोचा जरा पूछ तो ले शिवसहाय, इन लड़कों के भरोसे रहना ठीक नहीं।'

एक दिल्लगीबाज बोला 'आपने बड़ी अक्लमन्दी की वहाँ पहुंचकर पूछा। कोई बेबकूफ होता तो पहले यहीं पूछ लेता, तब ब्याह करने जाता।'

होली के बाद मुंशी जी को पता लगा कि यह मजाक था। उस दिन से उन्होंने दयाशङ्कर और राजनलाल से बोलना बन्द कर दिया।

नाटक

रात के साढ़े नौ बजने के निकट थे। दी ग्लोब थियेट्रिकल कम्पनी आफ बम्बई का प्रसिद्ध खेल 'मीराबाई' था। ग्लोब कम्पनी उस समय प्रथम श्रेणी की नाटक कम्पनी थी। उसके अभिनयकर्त्ता तथा उसका साजो-सामान सब प्रथम श्रेणी का था। जिस नगर में पहुँच जाती थी, वहाँ धूम मच जाती थी।

कम्पनी के मालिक दो पार्सी सज्जन थे। एक का नाम नसेरवाँ जी और दूसरे का नाम काऊस जी था। नसेरवाँ जी वृद्ध हो चला था, काऊस जी तरुण था।

नसेरवाँ जी तथा काऊस जी स्पेशल के गेट के सामने कुर्सी डाले बैठे हुए थे। उनके निकट ही कुछ लोग बैठे तथा खड़े थे। इसी समय तीन रेलवे कर्मचारी सेठ जी की ओर आते दिखाई पड़े। काऊस जी बोले—

"मोहनलाल स्टेशन मास्टर आवे छे!"

"आज बहु दिवस पछी आयो।" नसेरवाँ जी ने कहा।

"सारूँ माणस छे!"

"ते तो बरोबर छे!"

इसी समय तीनों व्यक्ति आ गये। उनमें से एक बोला—"साहब जी सेठ!"

"साहब जी। आइये! आज कई दिनों बाद दिखाई पड़े।"

तीनों व्यक्ति कुर्सियों पर बैठ गये। मोहनलाल ने कहा—"छुट्टी कहाँ मिलती है। आजकल हमारी डे ड्यूटी है, इसलिए रात का समय मिल गया और २० मील से आना भी तो बड़ा कष्ट-कारक है। आते समय तो कुछ नहीं, परन्तु लौटते समय कोई ट्रेन नहीं। सबेरे पांच बजे ट्रेन मिलती है।"

"आपको ट्रेन की क्या चिन्ता है? आप तो मालगाड़ी के ब्रेक या इञ्जिन पर भी जा सकते हैं।"

"हां! फिर भी झगड़ा ही है।"

इसी समय स्टेज के अन्दर से एक व्यक्ति आकर बोला—"टाइम थई गियो सेठ!"

"हाँ! हाँ! ड्राप उपाड़ो—लेओ खुदा नो नाम!"

वह व्यक्ति पुनः अन्दर चला गया। सेठ ने मोहनलाल से कहा—"जाइये ड्राप उठता है।"

"मुझे क्या! जब चाहूँ देख लूँ! इनको दिखाना है।" यह कहकर मोहनलाल अपने दोनों साथियों सहित उठे और स्पेशल क्लास के गेट पर पहुँचे। गेट कीपर ने सेठ की ओर देखा। सेठ ने कहा—'गवा दे।" गेट कीपर ने बगल होकर रास्ता दिया। तीनों व्यक्ति अन्दर चले गये।

थोड़ी देर में मोहनलाल उठकर बाहर आ गये। सेठ ने मुस्कराकर कहा—"आइये!"

मोहनलाल आकर बैठ गये और बोले—"मेरा तो दो बार का देखा

हुआ है। मैं तो दूसरे ड्राप के दो सीन देखूँगा। क्या गजब के हैं दोनों सीन—खेल की जान हैं।"

"हाँ उनकी सीनरी पर हमने पैसा भी खूब खर्च किया है!" नसेरवां जी बोले।

"बड़ी लाजवाब सीनरी है।"

"पचीस तारीख को आखिरी खेल है।"

"कब? इसी पचीस को।"

"हाँ!"

"अच्छा! कुल दस रोज रह गये हैं।" मोहनलाल ने कुछ घबरा कर कहा।

"जी!"

"स्पेशल ट्रेन ठीक हो गई।"

"जी हाँ!"

"कहाँ जायगी कम्पनी?"

"देहली!"

"अच्छा!"

"छब्बीस को देहली में पहला खेल है।"

"छब्बीस को पहुँच जायँगे?"

"हमारा स्टेज फोरमैन दो खेलों का सामान छब्बीस को सबेरे स्टेज में लगा देगा। एक वेगन सामान और स्टेज का काम करने वाले कुछ आदमी चार-पाँच दिन पहले पहुँच जायँगे।"

"छब्बीस को आप किस समय पहुँचियेगा?"

"चार बजे शाम को।"

"और साढ़े नौ बजे खेल है?"

"जी!"

"बहुत कम टाइम रक्खा है। केवल चार—साढ़े—चार घन्टे मिलेंगे।"

"काफी हैं।"

"सफर की थकान के बाद बिना आराम किये रात में खेल करना बड़ा मुश्किल पड़ेगा।"

"हम लोगों को आदत है। कभी कभी तो ट्रेन से उतरकर सीधे स्टेज पर जाना पड़ता है। घण्टा-आध-घण्टा भी आराम करने का मौका नहीं मिलता। लेकिन हम ऐसी हालत पैदा होने नहीं देते।",

"आप लोगों का जीवन भी विचित्र है।"

नसेरवां जी हँसने लगे।

कुछ क्षण बाद काऊस जी ने कहा—"यहां से पहला स्टापेज आप का स्टेशन है।"

"वह तो होगा ही। हमारे स्टेशन पर रुके बिना तो कोई ट्रेन आगे जा नहीं सकती।"

"हां साहब! बड़ा खास स्टेशन है।"

"यहां से कब चलेगी स्पेशल आपकी?"

"सबेरे दस बजे।"

"तो पौने ग्यारह तक आपकी ट्रेन हमारे स्टेशन पहुंचेगी।"

"हाँ और क्या? आप तो मिलेंगे।"

"अवश्य! और कोई सेवा हो तो बताइये।"

"सब आपकी दया है। स्टेशन पर मिलियेगा जरूर!"

"जरूर मिलूंगा। यदि रात की ड्यूटी भी हुई तब भी मिलूंगा।"

"और अभी तो बीच में एक-दो बार यहाँ खेल देखने आइएगा?"

"हां! कोशिश जरूर करूंगा। कठिनाई थोड़ी सी यह है कि रात भर यहाँ जागो, फिर जाकर दिन में ड्यूटी करो तो तबियत बड़ी खराब रहती है।"

"हाँ ! यह तो होता है। रात की ड्यूटी में छुट्टी लेकर आइये !"

-'छुट्टी का का हिसाब बड़ा गड़बड़ है।"

"एक रात के लिए कौन दिक्कत है।"

"हाँ—आं ! आऊँगा।"

(२)

तेइस तारीख को मोहनलाल पुनः खेल देखने पहुँचे।

प्रथमाँक के पश्चात जो इन्टर्वल हुआ तो सेठों के पास आ बैठे।

सेठ ने उनके लिए चाय मँगाई।

मोहनलाल बोले—"परसों आप चले जायँगे।'

"हाँ।'

"देहली में सब ठीक-ठाक हो गया।"

"हाँ—दो खेलों का सामान गया। एडवरटीजमेंट हो गया और छब्बीस तारीख के लिए सीट रिजर्व होने लगी होंगी।"

"स्पेशल ट्रेन का टाइम वही रहा।"

"जी हाँ। आप मिलेंगे न।"

'-अवश्य। अब देखिए कब मुलाकात होती है।'

"जब खुदा की मर्जी होगी। अपने हाथ की बात नहीं है।"

"बेशक ! और नाटक तो आपके ही यहां देखने को मिलते हैं, और सब तो यों ही हैं।"

"आप की मेहरबानी है।"

"कोई और नया खेल निकल रहा है ?"

"हाँ लिखा जा रहा है। दो महीने में स्टेज हो जायगा।"

"हमें तो कहीं जब आप इधर आयँगे तब देखने को मिलेगा।'

नसेरवाँ जी बोले—"आप जहाँ स्टेज हो वहीं आकर देख सकते हैं। अरे भाई रेलवे के आदमी हो। छुट्टी भर मिल जाय बस ! सफर खर्च आपका कुछ पड़ेगा नहीं।"

छुट्टी का प्रश्न तो बड़ा टेढ़ा है।"

"अजी ऐसा कुछ टेढ़ा भी नहीं है।"

"देखिये कोशिश करूँगा। आप इतनी इनायत कीजियेगा कि जिस स्टेशन पर स्टेज हो उसकी सूचना मुझे दे दीजिएगा।"

"अच्छी बात है, जरूर देंगे। हम सूचना देंगे तो आपको जरूर आना पड़ेगा।"

"कोशिश करेंगे! पक्का वादा नहीं करते।"

"कोशिश करोगे तो फिर आने में क्या है।"

"खेल समाप्त होने के पश्चात विदा होते समय मोहनलाल ने कहा—'अच्छा सेठ अब पचीस को मुलाकात होगी।"

"जी हाँ और आप के स्टेशन पर!"

"हाँ! ठहरना पड़ेगा।" मोहनलाल ने हँस कर कहा।

"अरे भई ऐसा गजब न करना। हमारा सब प्रोग्राम चौपट हो जायगा। हम तो आप से यह कहने वाले थे कि लाइन-क्लियर पहिले से ही मँगा रखना। तुरन्त लाइन क्लियर दे देना। अधिक न ठहरना पड़े।"

मोहनलाल हँस कर बिदा हुए।

(२)

पचीस तारीख को कम्पनी की स्पेशल ठीक साढ़े दस बजे रवाना हुई। स्पेशल में एक फर्स्ट और सेकेण्ड क्लास की, दो बोगी थर्ड की तथा चार मालगाड़ी के डिब्बे थे।

साढ़े ग्यारह बजे के लगभग स्पेशल मोहनलाल के स्टेशन पर पहुँच गई। मोहनलाल पहले से ही प्लेटफार्म पर मौजूद थे। वह लपक कर फर्स्ट क्लास कम्पार्टमेंट में सेठों के पास पहुँचे। सेठों ने मुस्करा कर पूछा—"कहिए! लाइन क्लियर दे दिया।"

"अभी! अजी जनाब मैंने उस दिन मजाक में कहा था कि दो घंटे

ठहराऊँगा—वह मजाक सच हो गया।"

"नाहीं।"

"सच मानिये! कान इधर लाइये।"

नसेरवाँ जी के कान में कुछ कहकर मोहनलाज बोले—"यह मामला है।"

नसेरवाँ जी का चेहरा उतर गया। घबरा कर बोले—"हमारा तो सब प्रोग्राम चौपट हो जायगा। यहाँ रुकने से आगे का मामला भी सब उलट-पलट हो जायगा और फिर न जाने कहां-कहां रुक कर जाना पड़े। हमारे पास समय कुल चार घन्टे का है। खेल का जाहिरात [विज्ञापन] हो चुका है, सीटें बुक हो चुकी हैं। ऐसी दशा में यदि खेल न हुआ तो पब्लिक बड़ी गड़बड़ी मचायगी।। सब रुपया वापस करना पड़ेगा—बदनामी घाते में होगी।"

"तो फिर हम-क्या करें सेठ—आप खुद सोच सकते हैं।"

"हां! लेकिन कोई कला दिखाओ यार!"

"क्या कला दिखाऊँ, कुछ समझ में नहीं आता।"

"कोई तरकीब निकालो।"

"अच्छा! देखो सलाह करता हूँ।"

यह कह कर मोहनलाल चले गये।

काऊस जी ने पूछा—शूँ छे!" (क्या है)

नसेरवाँ जी बोले—"मालूम थई जानो।" (मालूम हो जायगा)

थोड़ी देर में मोहनलाल आये और मुस्करा कर बोले—"अच्छा सेठ! तुम तो हमें नाटक दिखाते ही हो—आज हम तुम्हें नाटक दिखाते हैं। जरा रेल्वे का नाटक भी तो देखो।"

"तो हमें लाइन क्लियर मिल जायगा?"

"बस पीछे वाली स्पेशल आ जाय तो मिल जायगा। हम उस स्पेशल को रोक लेंगे, आपकी स्पेशल को लाइन-क्लियर दे देंगे।"

"इतने बड़े अफसर की स्पेशल कैसे रोक लोगे।?'

"हाँ ! काम बड़ा कठिन है। जिस स्पेशल के लिए सब ट्रेनें रोकी जा सकती हैं उसको रोकना आसान काम नहीं है। मगर नाटक ही तो ठहरा—नाटक देखियेगा।"

"अच्छी बात है।"

दस मिनट पश्चात स्पेशल आ गई। जैसे ही स्पेशल आकर स्टेशन पर रुकी वैसे ही एक पहिये से धुआँ निकलता देखा गया। बस स्टेशन का सारा स्टाफ दौड़ पड़ा। ज्ञात हुआ कि स्पेशल की एक बोगी का एक्सिल गर्म हो गया है। तुरंत उस बोगी को काटने का प्रबन्ध होने लगा।

इधर मोहनलाल नसेरवाँ जी के पास आकर बोला—"आपकी ट्रेन को लाइन-क्लियर दिया जा रहा है।"

"यह सब कैसे क्या हो गया ?"

"यह रेल्वे का नाटक है।"

"जरा बता तो दो यार ?"

"एक आदमी को मिट्टी के तेल में कपड़ा भिगोकर दे दिया गया। जैसे ही स्पेशल आकर रुकी उसने पहिये पर लत्ता रख कर जला दिया बस धुआँ निकलने लगा। केवल इतनी सी बात है।"

इसी समय इनकी स्पेशल के इन्जिन ने सीटी दी।

"अच्छा साहब जी !"

"साहब जी ! बड़ी मेहरबानी की।"

"आपको अपना नाटक दिखा दिया।"

"बहुत बढ़िया रही !,'

"धन्यवाद !"

विचित्र प्राणी

वैसे तो संसार में झूठ बोलने वालों की संख्या बहुत अधिक है-सच बोलने वाले बहुत कम पाये जाते हैं, परन्तु अधिकाँश मिथ्यावादी अपने किसी न किसी स्वार्थ के लिए झूठ बोलते हैं। अतः जब कभी कोई ऐसा व्यक्ति मिलता है जो व्यर्थ ही झूठ बोलता है तब यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि क्या झूठ बोलना भी एक प्रकार का रोग है। कुछ ऐसे व्यक्ति हैं जो केवल शान जमाने के लिए झूठ बोलते हैं और झूठ भी कैसा—! यद्यपि संसार का सब से बड़ा झूठा वह है जो यह कहता है कि वह कभी झूठ नहीं बोलता। एक बार कुछ लोगों ने निश्चय किया कि वे सब लोग बडे से बड़ा झूठ बोलने का प्रयत्न करें। जो सबसे बड़ा झूठ बोलेगा उसे पदक दिया जायगा। अतः लोगों ने झूठी बातें गढ़ कर कहना आरम्भ कीं और जिससे जितनी सम्भव हो सकी उतनी असम्भव बात उसने कही। जब अन्तिम व्यक्ति की बारी आई तो उससे कहा गया कि—"अच्छा अब तुम सुनाओ।" वह बोला—"मैं क्या सुनाऊँ मैं कुछ नहीं सुना सकता।" प्रश्न किया गया—"क्यों ?" उसने

कहा—"आप लोग कहते हो झूठ बोलो और मैंने आज तक कभी झूठ बोला नहीं अतः मैं झूठ कैसे सुनाऊं।" यह सुन कर सब ने एक स्वर से कहा—"पदक इसी को दिया जाना चाहिए। सब से बड़ा झूठा यही है।"

एक व्यक्ति है जो केवल अपने को धनी प्रमाणित करने के लिए झूठ बोलता है। इस व्यक्ति का नाम सीताराम है (असली नाम कुछ और ही है) पहले यह व्यक्ति सम्पन्न था; परन्तु अपने को असली हैसियत से कई गुना अधिक प्रमाणित करने के प्रयत्न में इसने अपनी सब सम्पत्ति खो दी और यह दशा हो गई कि भूखों मरने की नौबत आ गई। परन्तु इस व्यक्ति का शान जमाने का रोग नहीं गया।

एक बार एक सज्जन ने अपने एक मित्र से कहा—"भई वह सीताराम आजकल बड़ी तकलीफ में है उसकी कुछ सहायता कर दो।"

मित्र ने कहा—"भेज देना। जो कुछ हो सकेगा वह कर दिया जायगा।"

संध्या समय सीताराम जी पहुंचे। उसने प्रश्न किया—"कहो क्या हाल चाल है?"

सीताराम जी ने कहा—"हाल चाल सब अच्छे हैं। कल मालगुजारी जमा करके छुट्टी पाई है।"

"कितनी मालगुजारी देते हो?"

"अस्सी हजार देनी पड़ती हैं।"

जिन्होंने सहायता करने के लिए सीताराम को बुलाया था वह यह सुन कर अवाक रह गए। जो व्यक्ति अस्सी हजार मालगुजारी देता है उसकी सहायता वह क्या करें।

सीताराम जी बोले—"अरे भई कलकत्ते में एक कोठी खरीद ली है।"

"अच्छा! कब?"

"अभी हाल ही में—धर्मतल्ले में ली है।"

'कितने में खरीदी ?"

"माँगता तो डेढ़ लाख था लेकिन सवा लाख में सौदा तय होगया।"

'तब तो बड़ा अच्छा हुआ। ठहरने का आराम होगया।"

"बेशक! मैं उसे किराये पर नहीं उठाऊँगा—वह खाली पड़ी रहेगी। यहाँ से जो मित्र कलकत्ता जायँगे वह उसी में ठहरा करेंगे।"

पान वान खाकर सीताराम जी बिदा हुए। सहायता देने वाले सज्जन ने सोचा था कि दस-पाँच रुपये दे देंगे, परन्तु सीताराम जी की बातें सुन कर उनकी मन की मन में रह गई। इतने बड़े धनी आदमी को दस-पांच रुपये देना उसका अपमान करना है।

(२)

एक बार रास्ता चलते हमारी उनकी भेंट हुई। हमने पूछा—"कहो कहाँ से आ रहे हो ?"

आप छूटते ही बोले—"कलक्टर साहब ने बुलाया था।"

"खैरियत तो है ?" हमने पूछा।

"हां और कोई बात नहीं। कलक्टर साहब हमारे पिण्ड पड़े हैं—कहते हैं तहसीलदारी स्वीकार करलो।"

हमने हंसी रोक कर पूछा—"फिर आपने क्या कहा ?"

"हमने जबाव दिया कि—तहसीलदार जितनी तनख्वाह पाने वाले तो खुद मेरे यहाँ नौकर हैं, मैं तहसीलदारी लेकर क्या करूं ?"

आपने खूब जवाब दिया। लेकिन कलक्टर तुम्हारे पिण्ड क्यों पड़े हैं।"

"बात यह है कि हमारे पिता बड़े नामी आदमी थे। सरकार पर उनके बड़े एहसान हैं। सो उनका बदला उतारने के लिए हमें तहसील-दार बनाना चाहते हैं। अब आपही बताइए, मैं तहसीलदारी लेकर क्या करूं।"

"बेशक ! आपके लिए तो बिलकुल बेकार है।"

एक बार कई महीने के बाद भेंट होने पर जब पूछा गया कि कहाँ रहे तो तुरन्त उत्तर दिया—"वियना गया था।"

"अच्छा, क्यों ?"

"मेरी बांह में एक फोड़ा हो गया था, उसका आपरेशन कराने वियना गया था।"

"तो क्या उसका आपरेशन हिन्दुस्तान में नहीं हो सकता था।"

"क्यों नहीं, एक मामूली डाक्टर भी कर सकता था।"

"तब फिर वियना क्यों गये।"

"बात यह है कि मेरी शर्त यह थी कि आपरेशन का चिन्ह न रहे। हिन्दुस्तान के डाक्टर बोले—'निशान तो जरूर रहेगा।' इसलिए मैं वियना चला गया। वहाँ आपरेशन करा आया।"

"वहाँ निशान नहीं रहा।"

उन्होंने बाँह खोल कर दिखाई "देखिये, कहीं निशान है ?"

"बिलकुल नहीं।"

"बस यही बात मैं चाहता था—यहाँ वह नहीं हो सकी।"

"वियना जाते हुए स्वेज नहर तो पड़ी होगी।"

"हां, लेकिन रात में पड़ी थी मैं सो रहा था।"

लौटते हुए देखी होगी।"

वह मुस्करा कर बोले—"इत्ताफाक से लौटते हुए भी स्वेज नहर मेरे सोते में ही पास होगई।"

मानों स्वेज नहर गङ्गा का पुल था।

एक बार आपने अपने एक परिचित से पाँच रुपये माँगे। दीवाली की धनतेरस थी। परिचित ने रुपए दे दिए। कुछ दिन बाद जब पुनः उनसे भेंट हुई तो आपने कहा—"यार उस दिन तुम्हारे पाँच रुपयों ने ड़ेढ़ सौ खर्च करा दिये।"

"क्यों ?"

"जब मैंने तुमसे रुपए माँगे तब इत्तफाक से मेरे पास एक पैसा न था। पाँच रुपए लेकर बाजार से निकला और एक दुकान पर खड़ा होकर सामान देख रहा था कि मेरा एक आसामी मिल गया, उसने ड़ेढ़ सौ रुपए दिए। बस फिर क्या मैंने सब रुपयों का सामान खरीद लिया।',

परन्तु वह पाँच रुपए सीताराम जी ने आज तक वापस नहीं किये। इस प्रकार सीताराम जी एक बड़े ही विचित्र प्राणी हैं। घर में उप-वास भले ही हो, परन्तु बाहर लाखों की ही बातें करेंगे। अब उनका एक अन्तिम चमत्कार देखिए।

(३)

एक दिन उनके एक मित्र के पास एक व्यक्ति दौड़ा आया और बोला —"सीताराम जी के यहाँ कुर्की आई है—वह घर में हैं नहीं, उनकी पत्नी बेचारी बड़ी परेशान है, उसने आपको बुलाया है।"

मित्र महोदय सीताराम जी के घर पहुँचे। सीताराम जी उसी समय कहीं बाहर से आये थे और कपड़े उतार रहे थे। मित्र को देख मुस्कराते हुए बोले—"कहो कैसे पधारे। मैं अभी बम्बई से आ रहा हूँ।"

मित्र महोदय बोले—"भई मेरे पास एक आदमी गया था–कहता था, तुम्हारे यहां कुर्की आई है—इसलिए मैं दौड़ा आया।"

"कुर्की! कैसी कुर्की ?" सीताराम जी ने पूछा।"

"अब मैं क्या जानू—मुझे सूचना मिली इसलिए दौड़ा आया।"

'मुझे तो कुछ मालूम नहीं—देखो अन्दर पूछता हूँ।"

अन्दर गये और कुछ क्षण पश्चात मुस्कराते हुए लौट कर बोले–

"क्या मजाक है।"

मित्र ने पूछा—"क्या बात थी ?"

"बात क्या थी। मेरी पत्नी गोश्त बहुत बढ़िया पकाती है। एक बार तहसीलदार साहब की दावत की थी तब से उन्हें चाट पड़ गई। जब देखो तब यही कहते—'गोश्त कब खिलाओगे !' कई बार कहा—मैंने कुछ ध्यान नहीं दिया। इस पर आपने चिढ़ कर मालगुजारी की कुर्की निकाल दी। मैं बम्बई चला गया था इससे मालगुजारी जमा करने में देर हो गई—यही उन्हें मौका मिल गया।"

"आखिर हुआ क्या ?"

"कुछ नहीं। रुपया दे दिया गया, चले गये।"

जब मित्र महोदय लौट रहे थे तो एक पड़ोसी ने बताया कि अमीन घर का सामान कुर्क करके चला गया।

सीताराम जी में सबसे बड़ी सिफत यह है कि तुरन्त जवाब देते हैं—एक सेकण्ड भी नहीं सोचते।

इस कारण जो उनकी दशा से परिचित नहीं उन्हें उनकी बात पर विश्वास हो जाता है और परिचित हैरान होकर रह जाते हैं। एक मासिक पत्र के लिए ग्राहक बना रहे थे—उनकी सहायता के अभिप्राय से उन्हें यह काम सौंपा गया था। एक ग्राहक के रुपये चट कर गये। उस ग्राहक ने पत्र न पहुँचने के कारण शिकायत की। जब उन्हें मालूम हुआ कि उनके रुपये नहीं जमा हुए तो उन्होंने कहा—"सीताराम जी तो रुपये ले गए थे।"

सीताराम जी से जब पूछा गया तो वह तुरन्त बोले—"ह ग्राहक वह बन गए थे और सच बात यह है कि आजकल उनकी आर्थिक दशा खराब है इसलिए उन्होंने मुझ से कहा था कि तुम अपने पास से जमा कर देना मैं तुम्हें दे दूंगा। मैं रुपए जमा करना भूल गया बस यह बात थी।"

सीताराम जी यद्यपि अपने इस स्वभाव के कारण बहुत कष्ठ उठाते हैं। यदि वह अपने को लखपती प्रमाणित करने का खब्त छोड़ दें तो उनको मित्रों की सहायता प्राप्त हो जाय, उनको कहीं नौकरी-वौकरी लगवा दी जाय; परन्तु उनकी बातें सुन कर फिर किसी का साहस ही नहीं पड़ता कि उनको कुछ दे अथवा नौकरी का चर्चा तक उठावे। ऐसे विचित्र प्राणी भी संसार में हैं। संसारोऽयमतीव विचित्रः।

शुक्लजी की होली

पं० बैजनाथ शुक्ल आज बड़े प्रसन्न हैं। प्रसन्नता का कारण यह है कि आज शुक्ल जी घर जाने वाले हैं। होली का त्योहार आगया—बाजार एक सप्ताह बन्द रहेगा—अतः शुक्ल जी होली अपने गाँव की करेंगे। वर्ष भर में एक यही ऐसा त्यौहार है, जब पूरे एक सप्ताह की छुट्टी मिल जाती है—अन्यथा बजाज की नौकरी में छुट्टी का क्या काम! शुक्लजी एक कपड़े के फर्म में नौकर हैं। वेतन चालीस रुपये मासिक मिलता है। बही-खाते का काम करते हैं।

शुक्लजी ने घर के लिए कुछ सामान खरीदा—रङ्ग अबीर तथा कुछ अन्य सामान। यह सब बाँध कर आप बड़े हर्ष तथा उत्साह-पूर्वक स्टेशन चले। भांग भी गहरी छान ली थी; क्योंकि घर पहुँचने का समय ऐसा था कि उस समय भाँग छानने का समय व्यतीत हो जाता। आपने टिकट शहर से ही खरीद लिया था, इस कारण निश्चिन्त थे। इक्के वाले ने थर्डक्लास के टिकट-घर के सामने शुक्ल जी को विसर्जित करते हुए कहा—'टिकट-घर पर बड़ी भीड़ है।'

शुक्लजी के मुख पर हंसी नृत्य कर रही थी। हँस कर बोले—"हाँ ! इसीलिए हमने वहीं से टिकट मंगवा लिया था।'

'बड़ा अच्छा किया, नहीं तो बड़ी तकलीफ होती।'

'सो हमें कौन बता सकता है। हम ये सब बातें समझते हैं। इतनी उमर शहर में हो बीती है। देहात में घर जरूर है, परन्तु रहे शहर में ही हैं।'

शुक्ल जी की गठरी-बटरी देखकर एक कुली आ गया। उसने पूछा—'ले चलूँ ?'

शुक्लजी बोले-'अरे जाओ, बाबू लोगों को देखो। हम हैं देहाती। रहते शहर में हैं तो क्या हुआ—इतना बोझा हमारे लिए क्या है। इससे दूना होता तब भी कुछ नहीं था !'

यह कह कर शुक्लजी ने अपना सामान उठा लिया और चल दिये। इक्के वाला बोला—'इनमें बड़ी सिफत है, जब चाहते हैं देहाती बन जाते हैं—जब चाहते हैं शहराती। अभी हमसे कह रहे थे कि हमारी उमर शहर में ही बीती है और तुम से बोले—'हम देहाती हैं।'

'हाँ भइया ! यही बात है—जब जैसा मौका देखा वैसे बन गये।' कुली ने कहा।

उधर पण्डित जी पुल पर पहुंच कर नं० ३—४ प्लेटफार्म के गेट पर पहुँचे। गेट पर जो चेकर खड़ा था उससे आपने पूछा—

'क्यों बाबूजी, कालपी की गाड़ी इसी प्लेटफार्म से जायगी न ?'

बाबू ने सिर हिलाकर स्वीकार किया। पन्डितजी जीना उतरकर प्लेटफार्म पर पहुंच गये। दस मिनट पश्चात एक ट्रेन आगयी। आप झट उसी पर सवार हो गए।

(२)

ट्रेन चली। शुक्लजी ने अपना तमाखू का बटुआ निकाल कर फटाफट तमाखू बनायी और फांककर उसका स्वाद लेने लगे। मनमें सोच रहे

थे कि घर पहुँचेंगे तो लड़का यों कहेगा, पत्नी ऐसे बोलेगी, कल सबेरे होली खेलेंगे, इत्यादि-इत्यादि। गाड़ी में भीड़ बहुत थी, अतः शुक्लजी को केवल खड़े होने भरका स्थान मिला था। तमाखू फाँकने पर थूकने की आवश्यकता पड़ी। शुक्लजी दो बार अन्य मुसाफिरों को फाँद-फूंद कर खिड़की तक हो आये, तीसरी बार जो जाने लगे तो एक व्यक्ति बोला—'वाह जनाब! आपने तो सड़क ही बना ली।'

शुक्लजी बोले—'तमाखू खायी है तो थूकें नहीं।'

'न खाते थोड़ी देर तमाखू—ऐसी कौन तलब मारी जाती थी। यह कोई आपका घर तो है नहीं।'

'इन चीजों का मजा रेल में ही है। पान, तमाखू,बीड़ी, सिगरेट इन चीजों की ज्यादा जरूरत रेल में ही पड़ती है।' एक सिगरेट-प्रेमी, जो उस समय सिगरेट पी रहे थे बोले—''बात तो आप ठीक कहते हैं। वाकई इन चीजों का आनन्द सफर में ही आता है।'

'भला बताइये; पर गंवारों को कौन समझाए।'

वह व्यक्ति बिगड़कर बोला—'गंवार होंगे आप! जरा जबान सँभाल कर बात कीजिए।' शुक्लजी को अब होश आया कि वह क्या कह गए। बोले—'भाई साहब, माफ कीजिए, मुंह से निकल गया।'

आपका मुँह भी अजीब है। तमाखू खाने वालों का मुंह ऐसा ही हो जाता है।'

अतः शुक्लजी बिगड़े। लोगों ने समझा-बुझाकर दोनों को शान्त किया। इसी हुज्जत में एक स्टेशन निकल गया। उस स्टेशन पर गाड़ी नहीं रुकी। थोड़ी देर बाद दूसरा स्टेशन आया। इस स्टेशन पर गाड़ी रुकी। शुक्लजी भाँग के नशे में चूर शून्यभाव से लोगों का मुंह ताक रहे थे। जब गाड़ी स्टेशन से चली तो आपने पूछा—'यह कौन स्टेशन गया—पामा होगा या लालपुर।'

एक महाशय बोले—'पामा-लालपुर इधर कहां—वह तो झाँसी

लैन पर है।'

शुक्लजी मुस्कराकर बोले—'तो यह कौन लैन है—पंजाब लैन ?'

'यह है कलकत्ता लैन ! आप कहां जायंगे ?'

'पुखरायाँ।'

'पुखरायाँ !' और बैठे हो इलाहाबाद की गाड़ी पर। वाह महाराज !'

शुक्लजी घबराकर बोले—'ऐसा न बनाओ—हम कोई देहाती नहीं हैं। अच्छा, यह स्टेशन कौन था—यह बताओ।'

'यह था सरसौल !'

'क्या कहा ? उन्नाव कहा होता।' शुक्ल जी हंसते हुए सिर हिला कर बोले।'

'वाह महाराज, होली तो कल है और आप आज से ही पगला गये।'

अन्य लोगों ने भी कहा—'यह सरसौल ही तो गया है।'

अब तो महाराज चकराये। नशे के मारे आँखें बन्द हुई जा रहीं थीं—वे खुल गयीं। बोले—'अब आप सबने मिलकर हमें बनाने की ठानी है। सो हम ऐसे बनने वाले नहीं हैं।'

'बने तो आप ऐसे हैं कि याद करेंगे—अगला स्टेशन आने दीजिये।'

शुक्लजी के पेट में खलबली मच गयी। यद्यपि पूर्णतया यह विश्वास नहीं हुआ था कि वह गलत ट्रेन में बैठ गये हैं, परन्तु फिर भी खटका तो पैदा हो ही गया।

ट्रेन बिन्दकी रोड पर जाकर रुकी। शुक्लजी ने झाँक कर देखा तो बिन्दकी रोड था। यह देख कर शुक्लजी की जान निकल गयी, भाँग का नशा काफूर हो गया। घबराकर बोले—'अब क्या करें, यह तो बड़ा गजब हो गया।'

'इस स्टेशन पर उतर जाओ, दूसरी गाड़ी आये तो लौट जाना।'

शुक्ल जी गठरी-वठरी लेकर उतर पड़े। चिराग जल चुके थे।

प्लेटफार्म पर उतर कर एक किनारे खड़े हो गये। सोचने लगे कि—'त्योहार मिट्टी में मिल गया—अब समय पर घर न पहुंच पायेंगे। बाल बच्चे प्रतीक्षा करेंगे—जब हम न पहुँचेंगे तो बड़े निराश होंगे।' यह सोचते-सोचते शुक्लजी रोने लगे। इसी समय टिकट कलक्टर ने आकर कहा—'टिकट कहाँ है? बाहर क्यों नहीं जाते?'

शुक्लजी बोले—'क्या बतावें, हमारे पास पुखरायाँ का टिकट है। यह गाड़ी इधर चली आयी।'

'बड़ी दया की गाड़ी ने आपके साथ! टिकट दिखाइये।'

'इस गाड़ी में कैसे बैठ गये?' बाबू ने टिकट देखकर पूछा।

'इसी गाड़ी में तो हम हमेशा बैठते हैं।'

'अच्छा! और यह गाड़ी आपको पुखरायाँ पहुंचा देती थी?'

'हाँ!'

'तो आपको उधर पहुँचाकर तब इधर आती होगी—आज सीधी चली आयी। गाड़ी को यह पता नहीं चला कि आप उस पर सवार हैं।'

शुक्लजी बोले—'क्या बतायें, कुछ समझ में नहीं आता। उसी प्लेटफार्म पर हमेशा गाड़ी आती थी।' अब बाबू की समझ में बात आयी। वह बोला 'अच्छा, उसी प्लेटफार्म से झाँसी की और यह—दोनों गाड़ियाँ छूटती हैं, तो आप उस पर न बैठ कर इस पर बैठ गये।'

'लेकिन हमेशा जिस तरह की गाड़ी पर बैठते थे उसी पर बैठे थे।'

'झाँसी वाली गाडी लेट होगी, इसलिए पहले यह आ गयी—आपने समझा झाँसी वाली गाड़ी है।"

'हाँ, ऐसा ही हुआ है। तो अब हम क्या करें?'

'पहले तो आप यहां तक का किराया दीजिए। इसके बाद कहीं बिस्तर लगाइए। रात में जो गाड़ी जाय उससे चले जाइएगा।'

शुक्ल जी ने गाड़ी का समय पूछा तो उन्हें पता लगा कि वह जल्दी से जल्दी अपने गाँव में पहुँचेंगे तो दूसरे दिन दिन के दो बजे के पहले नहीं पहुँचेंगे। यह सुन कर शुक्लजी पुनः रोने लगे।

'जो कुछ हुआ सो हुआ—रोते क्यों हो ?' टिकट कलक्टर ने पूछा।

'हमारा त्योहार मिट्टी हो गया और हमारा ही क्या, हमारे बाल-बच्चों का भी त्योहार गया।' रङ्ग-अबीर हमारे पास है—और भी त्योहार का कुछ सामान है। वह सब समय पर न पहुँचेगा तो लड़के बच्चे त्योहार कैसे मनायेंगे।'

(३)

किराया इत्यादि देने के पश्चात् शुक्लजी ने प्लेटफार्म पर ही बिस्तर जमाया। बिस्तर तो कोई साथ था नहीं—एक चादर ओढ़े हुए थे, उसे बिछा लिया और गठरी सिर के नीचे रख ली। कुछ रात गए शुक्ल जी को बड़े जोर की भूख लगी। यद्यपि रंज के मारे कुछ न खाने का निश्चय कर चुके थे, परन्तु भूखने विवश कर दिया। प्लेटफार्म के बाहर ही बरामदे में मिठाई वाले की दूकान थी। शुक्ल जी उठकर वहाँ पहुँचे। चार आने की मिठाई लेकर खायी, परन्तु तृप्ति न हुई तो चार आने की और ली। मिठाई खाकर पानी पिया—तम्बोली से एक पैसे के पान लेकर खाए और अपने स्थान लौटे। लौटकर आए तो गठरी और चादर गायब ! शुक्लजी ने इधर उधर देखा, जब कहीं दिखाई न पड़ी तो पेट खलबला गया। दौड़कर स्टेशन मास्टर के रूम में घुस गए और हल्ला मचा कर बोले—'साहब, हमारी गठरी और चादर—।' स्टेशन मास्टर डाँटकर बोला—'तुम अन्दर क्यों घुस आये—बाहर जाओ।'

'अरे साहब, हमारी गठरी गायब हो गयी, आप कहते है बाहर जाओ !'

'तो हम क्या करें ? अपने असबाब-की हिफाजत करना आपका

काम है—हमारा काम नहीं है।'

'अरे स्टेशन मास्टर साहब ! मैं वहाँ पड़ा था—चादर बिछा रखी थी। अभी हम बाहर कुछ जलपान करने चले गये—बस इतनी देर में गायब हो गयी।'

'असबाब छोड़कर बाहर चले गए—तब ठीक किया। अच्छा बाहर जाओ।'

'अरे साहब, सन्नाटा था, कोई था नहीं, सो हमने सोचा, इस समय कौन लेगा। बाहर वाला तो कोई ले नहीं गया, आपके स्टेशन के किसी कुली-कबाड़ी ने लिया है।'

'हमारे कुली सब चोर है—क्यों ? तुम्हारा असबाब गया इसका सबूत है ? कोई गवाह है ?'

'हम गवाह कहाँ से लायें ?'

'तो बाहर जाओ—हमारा वक्त खराब मत करो।'

यह कह स्टेशन मास्टर अपना काम करने लगा। शुक्लजी ने फिर रोना आरम्भ किया। बोले—'जाने किस भकुए का मुँह देख कर चले थे। एक तो पुखरायाँ से यहाँ आ गए—और अब यहाँ सब सामान चला गया। आप कहते हैं गवाह लाओ। यहाँ हम गवाह कहाँ से लायें।'

'सो हम क्या करें बाबा ! सफर में तुम इतने बेखबर हो गए कि असबाब छोड़ कर सैर करने चले गए।'

'अरे साहब, भोजन करने गए थे—भूख बड़े जोर की लगी थी—कौन कलकत्ता-बम्बई है जो सैर करने जाते।'

'तो अपना असबाब साथ ले जाते।'

'क्या बतायें—वह तो सायत ही बिगड़ गयी, नहीं तो यहाँ ही क्यों आते इस समय अपने घर में बैठे होते आनन्द से !'

यह कह शुक्लजी ने फिर क्रन्दन-स्वर का आश्रय लिया। स्टेशन

मास्टर बोले—'हम कुछ नहीं कर सकते। तुम किसी को बताओ हम पूछ ताछ करें—स्टेशन भरके आदमियों की तलाशी नहीं ली जा सकती।'

'हमने तो किसी को देखा नहीं-हम कैसे कह दें।'

'तो बाहर जाओ। चलो!'

शुक्लजी बाहर आये और प्लेटफार्म के एक खम्भे के सहारे उकड़ूँ बैठ कर अपनी दशा पर रोने-झीखने लगे।

दूसरे दिन दोपहर को एक बजे पुखरायाँ स्टेशन उतरे। वहाँ से उनका गांव तीन मील था। शुक्लजी हाथ हिलाते हुए गाँव चले। रास्ते में जो दो-एक गाँव मिले तो देखा--बड़ी धूम की होली हो रही है। एक जान-पहचान के मिल गये। वह बोले—'कहाँ से आ रहे हो?'

'शहर से।'

'ऐसे ही खाली हाथ! जान पड़ता है—सैर को निकले थे।'

शुक्लजी माथे पर हाथ मार कर बोले-'क्या दिन-दशा है! रात वह चाण्डाल स्टेशन मास्टर भी यही कहता था और आप भी यही कह रहे है। सैर करने का यह कौन समय है—पहले यह बताइए। परिचित ने देखा कि शुक्लजी इस समय फौजदारी करने के मूड में हैं। अतः वह बोला—'खाली हाथ देखकर, मैंने कहा। शहर से आते तो खाली न होते!'

'हम लुट गये भइया, इससे हाथ खाली हो गया—नहीं तो भगवान का दिया सब कुछ था।'

शुक्लजी ने सब वृत्तान्त सुनाया। परिचित ने सुनकर सहानुभूति प्रकट की। परन्तु, जैसे ही शुक्लजी ने उसकी ओर पीठ फेरी, वह खुलकर हँसा।

अपने गाँव में प्रविष्ट हुए तो एक फाग वालों की टोली मिल गयी। लोग 'आओ, आओ!' कहकर इन पर जुट गये। फिर क्या था, शुक्लजी

की खूब गत बनी। शुक्लजी को क्रोध आ गया। एक लड़के को मार बैठे। इस पर अन्य लोगों ने शुक्लजी के चार छः रसीद किये। बस फिर क्या था, शुक्लजी वहीं बैठ गए और लगे स्त्रियों की भाँति तह-लका मचाने—'एक तो लुट गए, रातभर पड़े जड़ाते रहे, पैसे का नुकसान हुआ, चोरी अलग हो गयी। सो हमारी दशा तो किसीने पूछी नहीं, उलटे हमें मारते हैं—यह गाँव वाले भी दुश्मन हो गये। न जाने कौन दशा आयी है!'

जब लोगों को शुक्लजी की दुर्दशा का हाल मालूम हुआ तो उन्होंने माफी माँगी और समझाते बुझाते हुए घर तक पहुंचा आए।

घर में घुसते ही पत्नी ने आडे हाथों लिया—'कहाँ रह गए थे? यह भी न सोचा कि लड़के बच्चे राह देखेंगे, त्यौहार का दिन है। और अब भी आए तो खाली हाथ झुलाते चले आए।'

शुक्लजी बोले—'क्या तुम सब लोगों ने हमें उल्लू बनाने की सलाह कर ली है। अरे वह तो गनीमत कहो कि हम आ गए, नहीं तो हमारे भी दर्शन दुर्लभ हो जाते।'

पत्नी ने जब सब हाल सुना तो कहा—'अब तुम भांग बहुत पीने लगे हो—रेल में भी भाँग पीके चलते हो—यह भी नहीं सोचते कि नशा खाके परदेस नहीं जाना चाहिए।'

'और सुनो! जैसे हमने आज नयी पी, हमेशा ही भाँग पीकर रेल में चलते हैं। कोई होली दीवाली को ही पीते हैं क्या? वह तो संयोग की बात थी—ऐसा होना बदा था। हुँह! जिसे देखो हमीं को उल्लू बनाता है। तुम भी कभी उल्लू बनोगी, तब पूछूँगा।'

'रहने दो! मुझे उल्लू बनने की साध नहीं है।'

'और मैं तो जैसे बड़े शौक से अपने आप बना।'

यह कहकर शुक्लजी बड़बड़ाते हुए स्नान करने चले गए।

कसौटी

बाबू ज्ञाननाथ पर आधुनिकता का भूत बुरी तरह सवार है। खान-पान, भूषण-वसन, शिष्टाचार इत्यादि सब ताजा और गरमागरम ही पसन्द है। उनकी एक छोटी बहिन है जो उनसे चार वर्ष छोटी है—अर्थात उसकी वयस १८, १९ वर्ष के लगभग है। बहिन का नाम चन्द्र-कला है। ज्ञाननाथ की माता नहीं है—केवल वृद्ध पिता हैं। पिता सर-कारी पेन्शनर हैं। ज्ञाननाथ की अति-आधुनिकता से उनकी पटरी नहीं बैठती, इस कारण वे विरक्त भाव से घर के एक कोने में पड़े रामभजन किया करते हैं। बाबू ज्ञाननाथ मालरोड पर बिजली के सामान की दुकान किये हुए हैं।

सन्ध्या का समय था। ज्ञाननाथ अपनी दुकान में बैठे थे। इसी समय एक अधेड़ महाशय दुकान में प्रविष्ट हुए। ज्ञाननाथ उन्हें देखते ही उठ खड़े हुए और मुस्कराते हुए उनकी ओर बढ़े। अधेड़ सज्जन बोले-'कहो भाई ज्ञाननाथ, अच्छे तो हो?'

ज्ञाननाथ ने उनका हाथ, जिससे काम लेने की फिलहाल उन सज्जन

की तनिक भी इच्छा न थी, अपने हाथ में लेकर दो-तीन झटके दिये और अङ्गरेजी में कहा—'आप से मिल कर बड़ी प्रसन्नता हुई। कहिये, आपकी क्या सेवा करूँ?' अधेड सज्जन ओह्-ओह् करके कराह उठे। ज्ञाननाथ ने पूछा—'क्या मामला है, कुछ चित्त खराब है?'

'तुमने मेरा हाथ झकझोर डाला—मेरे हाथ में चोट है।'—अधेड़ सज्जन हिन्दी में बोले।

'ओ! बड़ा अफसोस हुआ। क्षमा कीजिये। तकलीफ है?'—ज्ञान-नाथ ने अङ्ग्रेजी में पूछा।,

'कहा तो—हाथ में चोट है।'

'हां-हां! कोई दुर्घटना हुई?'

'पहले एक बात बताओ—क्या तुम हिन्दी नहीं बोल सकते? मैं हिन्दी बोल रहा हूँ, तुम अंग्रेजी छौंक रहे हो।'

ज्ञाननाथ हिंदी में बोले—'क्या बताऊं, आदत पड़ गयी है। यहां अधिकतर अंग्रेजी पढ़े लोग ही आते हैं।'

'जो अंग्रेजी बोले उससे अंग्रेजी बोलो, जो हिन्दी में बात करे उससे हिन्दी बोलो। प्रत्येक आदमी से अंग्रेजी बोलना उचित नहीं है।'

'यस-यस, ओ! क्षमा कीजिए! अनजाने अंग्रेजी ही बोलने लगता हूं। और एक बात यह है कि जो प्रवाह और भाव व्यक्त करने की शक्ति अंग्रेजी में है वह हिन्दी में नहीं है।'

'कुछ भी हो, हिन्दी हमारी मातृ-भाषा है, हमें उसी का व्यवहार करना चाहिये। और सब कुशल?'

'आपकी दया है। कोई सेवा बताइये।'

'कुछ नहीं, ऐसे ही चला आया। बहुत दिनों से भेंट नहीं हुई थी। पिताजी अच्छे हैं?'

'हाँ, बिलकुल अच्छे हैं।'

'किसी समय उनसे भी मिलूँगा।'

'आपका घर है, जब इच्छा हो पधारिये ।'

'अच्छा अब चलूँगा ।'

यह कहकर अधेड़ सज्जन विदा हुए । ज्ञाननाथ अपने सहकारी की ओर देखकर बोले—'ईडियट ! (बेवकूफ) मुझे ऐसे आदमियों की शक्ल से नफरत है ।' सहकारी ज्ञाननाथ के मुँह की ओर ताक कर सोचने लगा—जिस आदमी की शक्ल से नफरत हो उससे क्या कोई इतने प्रेम से मिल सकता है !

इसी समय एक एंग्लो-इण्डियन पूर्णवयस्का मिस साहबा आ गयीं । ज्ञाननाथ तुरन्त सीधे (एटेन्शन) खड़े हो गये । मिस ने पूछा—'कोई टेबुल लैम्प । खूबसूरत-सा हो ।'

'हाँ-हाँ ! कृपया इधर आइये !'

एक अलमारी के सामने पहुंचकर ज्ञाननाथ ने कहा—'पसन्द कर लीजिए ।'

मिस ने देखकर एक लैम्प निकलवाया और उसका दाम पूछा । ज्ञाननाथ बोले—'पन्द्रह रुपए आपके लिए ।'

मिस ने तुरन्त पन्द्रह रुपए निकालकर दे दिये । जब मिस चली गयी तो ज्ञाननाथ सहकारी से बोले—'मुझे तो इन लोगों से व्यवहार करना पसन्द है । ज्यादा बात नहीं, चीज पसन्द आ गयी तो तुरन्त ले ली । हिन्दुस्तानी तो हुज्जत करने लगते हैं ।'

सहकारी ने कोई उत्तर नहीं दिया, केवल गर्दन हिला दी । इसी समय टेलीफोन की घन्टी बजी । ज्ञाननाथ ने लपक कर 'फोन' का 'रिसीवर' उठाया और कहा...'हलो ! .... यस ! अच्छा ! दावत है ?...हूँ !....बहुत सुन्दर... अवश्य आऊंगा..हाँ ! हाँ उसे भी साथ लाऊंगा ।... कहो तो दोपहर का खाना भी न खाऊं ।'

रिसीवर रखकर ज्ञाननाथ ने कहा—'क्या मुसीबत है ? हिन्दुस्तानी पतन, न छूटो न काटा ! न जाने हिन्दुस्तानियों में कब सभ्यता

आयेगी ?'

सहकारी ने पुनः उनकी ओर देखा। सम्भवतः उसकी दृष्टि से मौन भाषा के ये शब्द निकल रहे थे—'तो ईसाई हो जाइये।'

'ऐसी दावतों में जाना मुझे बिलकुल पसन्द नहीं। सब बातें गंवारू होती हैं। पर मजबूरी यह है कि जाना ही पड़ता है।'

सहकारी ने केवल गर्दन हिला दी।

(२)

सन्ध्या को सात बजे के लगभग ज्ञाननाथ दुकान से घर पहुँच गये। चन्द्रकला से यह कहकर कि—'तैयार हो जाओ, दावत में चलना है।' स्वयं कपड़े बदलने चले गये। आध घन्टे पश्चात् दोनों अपने-अपने कमरे से निकले। ज्ञाननाथ कालर, नेकटाई, सूट-बूट, फेल्ट हैट से लैस थे और चन्द्रकला घुटनों से कुछ ऊपर तक फ्राक पहने थी—पैरों में मोजे, सिर खुला हुआ—केश किसी बड़े पक्षी के झोंझ की तरह कन्धों पर फैले हुए। बाल कानों पर आ जाते थे तो उन्हें हाथ के झटके से पीछे कर लेती थी। यह क्रिया उसे प्रत्येक दूसरे-तीसरे मिनट करनी पड़ती थी—कभी बायें हाथ से, कभी दाहिने हाथ से। इस प्रकार २८, १६ वर्षकी पूर्णवयस्का युवती अविवाहित कन्या की बचकानी पोशाक में विचित्र दिखाई पड़ती थी। गेहुँए रङ्ग पर पावडर यद्यपि हल्का था, परन्तु यह पता लग जाता था कि पाउडर थोपा गया है। लिपस्टिक का भी व्यवहार किया गया था। मुखमण्डल कुछ कुछ गोरा दिखाई पड़ता था, पर हाथ काले; क्योंकि हाथों में पाउडर नहीं मला गया था।

दोनों घर के बाहर निकले। कुछ दूर चलकर एक ताँगा लिया। ताँगेवाले ने पूछा—'कहाँ ले चलूँ ?'

ज्ञाननाथ ने अंग्रेजों की भाँति हिन्दुस्तानी बोलने का प्रयत्न करते हुए कहा—'शिविल लाइन जानता ?'

'हाँ साहब, जानता ?' ताँगेवाले ने हँसी रोककर कहा।

'चेलो ! बँगलो नम्बर पैंतीश—थर्टीफाइव ।'

ताँगेवाले ने ताँगा बढ़ाया । मनमें सोच रहा था—'शकल चुड़ैलों की, नाज परियों के ।'

इधर चन्द्रकला के दोनों हाथ चाबीदार खिलौने के हाथों की तरह चल रहे थे ।

बँगले के सामने पहुँचकर ताँगा रुका । दोनों व्यक्ति ताँगे से उतरे । ज्ञाननाथ ने किराया दिया । ताँगेवाला बोला—'साहब, दो आने और दीजिये ।''

'नो ! नो ! मैंन ! हमने ठीक दिया ।'

'यहाँ तक का किराया बारह आने है, साहब ।'

'बस, बको मत !'

यह कहकर ज्ञाननाथ चल दिये । एक दूसरा ताँगेवाला खड़ा था, वह बोला—'साहब हैं, ज्यादा बात नहीं माँगता ।'

'लेकिन बना हुआ है ।' पहले ताँगे वाले ने कहा; और अट्टहास किया ।

बँगले के सामने लॉन पर एक ओर बैठने के लिए कुर्सियाँ पड़ी थीं । आधा लॉन कनातों से घिरा हुआ था—उसके भीतर खाने की मेजें लगायी गयी थीं । ज्ञाननाथ तथा चन्द्रकला को देखकर आतिथेय महोदय मुस्कराते हुए आगे बढ़े । चन्द्रकला की बत्तीसी खुल गयी । आतिथेय महोदय ने ज्ञाननाथ से हाथ मिलाया और चन्द्रकला की ओर देखकर कहा—'आपके आने से मुझे बडी प्रसन्नता हुई ।' चन्द्रकला हुक्के जैसा मुंह बना कर बायें हाथ से मक्खियाँ-सी उड़ाती हुई बोली'ओ मिस्टर शर्मा ! आपकी बड़ी कृपा है ।'

वार्तालाप अंग्रेजी में ही चल रहा था । मि० शर्मा उन्हें साथ ले गये और बिठाया । चन्द्रकला से कुछ थोड़ी दूर दो स्त्रियां बैठी हुई थीं—उनमें से एक अधेड़ थी और दूसरी जवान । ये दोनों साड़ी,

जम्पर, सेन्डल से सुसज्जित थीं। चन्द्रकला ने उनकी ओर देखा तो दोनों ने मुस्कराते हुए गर्दन हिलायी। चन्द्रकला बोली—'ओ! मिस कृष्णा!' यह कह कर वह अपने स्थान से उठी और उन दोनों के पास जा बैठी। ज्ञाननाथ एक व्यक्ति से बातें करने लगे थे। बीच-बीच में चन्द्रकला तथा कृष्णा के हंसने का शब्द सुनाई देता था।

ये दोनों बात-बात पर हंसती थीं। ऐसा प्रतीत होता था कि ऐसे अवसरों पर हंसते रहना भी सभ्यता का द्योतक है। जब ये दोनों खिल-खिल करके हंसती थीं तो वार्तालाप करते हुए आदमी अपना वार्तालाप एक क्षण के लिए बन्द करके इनकी ओर देखने लगते थे। एक ओर कुछ पुराने आचार-विचार के आदमी बैठे थे। वे दोनों युवतियों को इस प्रकार खिलखिलाते देखकर आपस में खुसुर–फुसुर करने लगे। एक बोला—

'क्या बेलाग हैं ये दोनों—कोई हया–शर्म ही नहीं।'

'आजकल यही फैशन है। फैशन में शर्म हया का क्या काम!'

'जरा इनको देखिए– अभी दूध–पीती बच्ची-सी हैं। फ्रॉक पहन कर आयी हैं।'

'भगवान झूठ न बुलवाए तो कम से कम दो बच्चों की माँ होने लायक तो हो ही गयी हैं।'

'आप समझे नहीं। यह इसलिए इस फैशन में हैं जिसमें लोग जान जायं कि अभी अविवाहित हैं।'

इसी समय आतिथेय महोदय ने आकर कहा—'चलिए!'

सब लोग भड़भड़ाकर उठे।

कनातों के बीच में खाने की मेजें लगायी- गयी थीं। एक-एक मेज पर चार आदमियों के लिये स्थान रखा गया।

चन्द्रकला, कृष्णा तथा उसके साथ की स्त्री और एक पुरुष, जो अधेड़ स्त्री का पुत्र तथा कृष्णा का पति था, बैठे। ज्ञाननाथ अपने

परिचितों के साथ बैठ गये। चन्द्रकला तथा कृष्णा तर्जनी तथा अँगूठे से भोजन-सामग्री इस प्रकार उठाती थीं कि मानों किसी डङ्क मारने वाले कीड़े को उठा रही हों। एक ने तो यह देखकर धीमे स्वर में फब्ती भी कैसी, बोला—'बचायें—कहीं काट न खाय।' एक चुटकी में जितना आ जाता था उसे मुँह में रखकर इस प्रकार मुँह चलाती थीं मानों पान चबा रही हों। चन्द्रकला भोजन कर रही थी, परन्तु उसके दोनों हाथ बार-बार कानों पर आ जाने वाली लटों से युद्ध भी करते जाते थे। सब पुरुष भोजन कर चुके, परन्तु स्त्रियों का भोजन समाप्त नहीं हुआ था—उनकी बातें भी चल रही थीं और उसी मन्थर गति से भोजन भी चल रहा था। पुरुष सब उनकी प्रतीक्षा में बैठे थे कि कब इनका समाप्त हो, परन्तु इन स्त्रियों को कदाचित पुरुषों को इस प्रकार बिठाये रखने में ही अपना महत्व दिखाई पड़ रहा था। अन्त में इनका भोजन पुरुषों का भोजन हो चुकने के २० मिनट बाद समाप्त हुआ।

घर लौटते समय ज्ञाननाथ चन्द्रकला से बोले—'मुझ से तो खाया नहीं गया। न चम्मच, न काँटा—तोबा! लोग न जाने कैसे हाथ से खा रहे थे। मुझ से तो खाया नहीं गया।'

'खाना था तो अच्छा, पर एटीकेट के कारण छोड़ना पड़ा।,

'मिठाई मुझे भी अच्छी लगी थी, पर मैं तो छोड़ आया। इधर से मिठाई लेते चलें—अभी तृप्ति नहीं हुई।'

'मेरा भी पेट नहीं भरा—घर पर खाना पड़ेगा।'

(३)

ज्ञाननाथ की दुकान पर एक एंग्लो-इण्डियन मिस आने लगी। वयस २०-२१ वर्ष के लगभग थी। इसका नाम मिस क्लारा विड था। क्लारा एक अंग्रेजी दफ्तर में 'टाइपिस्ट' थी। उसका एक बड़ा भाई था--वह एक मिल में काम करता था। बुढ़िया माँ घर पर ही रहती थी। ये लोग मालरोड की एक बिल्डिङ्ग में दो कमरे लिये हुए थे।

क्लारा के भाई का नाम विक्टर ब्रिड था-वह भी बहुधा इतवार के दिन ज्ञाननाथ की दुकान पर आकर बैठ जाता था। ज्ञाननाथ को इन दोनों की मित्रता पर कुछ गर्व था। अपने उन हिन्दुस्तानी मित्रों से, जिन्हें साहब तथा मेमों को निकट से देखने का अवसर न मिलता था, ज्ञाननाथ बड़ी शान के साथ यह बताया करते थे कि—'हम तो इन लोगों से बैठे घण्टों ही बात किया करते हैं।' यह कह कर आप इस अदा से उन्हें देखते मानों जिसे उनके जैसा सौभाग्य प्राप्त नहीं होता, उसका जन्म लेना ही व्यर्थ गया।

क्लारा तथा विक्टर प्रायः बिजली का सामान भी खरीदा करते थे, छोटी-मोटी चीजों के दाम तो ज्ञाननाथ स्वयं ही न लेते थे। जो चीजें ये दोनों खरीदते थे उन चीजों के दाम भी दो-दो तीन-तीन महीने में दिया करते थे। बहुधा संध्या समय ज्ञाननाथ इन दोनों अथवा इनमें से किसी एक के साथ घूमने भी निकल जाते थे। पारस्परिक दावतों का व्यवहार भी होता था। कभी ज्ञाननाथ इनके यहां भोजन करते और कभी इन्हें दावत देते थे।

एक दिन ज्ञाननाथ के पिता ने ज्ञाननाथ से कहा—'ज्ञान, तुम्हें क्या हो गया है? इन लोगों को तुम अपने साथ पुराने बर्तनों में खिलाते हो, तुम्हारे ऐसे भ्रष्ट आचार-विचार हो गये!'

ज्ञाननाथ ने कहा—'पिताजी, अब वह समय नहीं रहा—जमाना बहुत आगे बढ़ गया है। अब छूत-छात असभ्यता समझी जाती है। आपके बर्तन तो अलग हैं—आप क्यों चिन्ता करते हैं?'

'मेरे बर्तन अलग हैं तो इसमें तुम्हारी क्या कृपा है? मुझे स्वयं यह बात देखनी पड़ती है। मैं ऐसी घनिष्टता पसन्द नहीं करता और तुमको भी सलाह दूँगा कि इन लोगों से मेलजोल बढ़ाना ठीक नहीं। बढ़ाओगे तो धोखा खाओगे।'

ज्ञाननाथ ने पिता की बात एक बूढ़े आदमी का खब्त समझ कर

उस पर कुछ ध्यान नहीं दिया।

संध्या का समय था। ज्ञाननाथ अपनी दुकान में बैठे थे। इसी समय क्लारा आ गयी। कुछ क्षण तक इधर-उधर की बातें करने के पश्चात वह बोली—'मि० ज्ञाननाथ, मैं एकान्त में आपसे कुछ बातें करना चाहती हूँ।'

ज्ञाननाथ तुरन्त उठ खड़े हुए और क्लारा को साथ लेकर दूसरे कमरे में पहुँचे। वहाँ भी एक मेज तथा तीन-चार कुर्सियाँ पड़ी हुई थीं मेजपर एक लैम्प रखा हुआ था। उसका स्विच खोलकर ज्ञाननाथ ने रोशनी की और कुर्सीपर बैठकर क्लारा को भी बैठने का संकेत किया, तत्पश्चात कहा—'कहो।'

'मैं इस समय एक बड़ी विषम स्थिति में आ गयी हूँ। यदि मुझे पांच सौ रुपये तुरन्त नहीं मिलते तो मेरी नौकरी जाती रहेगी'।

'क्या मामला है?' ज्ञाननाथ ने मृदुतापूर्वक पूछा।

'इस समय इतनी फुर्सत नहीं है। इस समस्या से छुट्टी पाऊँगी तो सब बताऊँगी।'

'तो पाँच सौ रुपये चाहती हो?'

''हाँ दो-तीन महिने में अदा कर दूँगी।'

'वाह! यह कितनी बड़ी बात है—अभी लो।''

यह कहकर ज्ञाननाथ उठ खडे हुए। क्लारा ने प्रसन्न होकर कहा—'ओ यू डालिंग।' अपने लिए क्लारा के मुख से डालिंग का शब्द सुनकर ज्ञाननाथ का दिमाग घूम गया। उन्होंने तिजौरी में सौ सौ के पांच नोट निकालकर क्लारा को दिये। क्लारा ने नोट लेकर ज्ञाननाथ के गले में अपनी बाहें डाल दीं और ज्ञाननाथ का मुख चूमकर बोली—'यू आर ए डियर!' (तुम प्यारे लगते हो।)

यह कहकर वह तुरन्त कमरे के बाहर निकल गयी। ज्ञाननाथ प्रसन्नता से हतबुद्ध होकर खड़े देखते रह गये।'

इसके पश्चात् क्लारा तथा विक्टर ने क्रमशः आना जाना कमकर दिया और एक महीना बीतने पर एकदम बन्द कर दिया। ज्ञाननाथ एक-दो बार उनके घर पर भी गये, पर 'घर पर नहीं हैं' का उत्तर पाकर लौट आये। एक-दो बार राह में भेंट हो गयी तो उन्होंने रूखेपन से एक दो बात करके अपना रास्ता पकड़ा।

दो मास बीत जाने पर एक दिन ज्ञाननाथ ने अपने पाँच सौ रुपयों का तकाजा भेजा। नौकर लौट कर आया और बोला—"वह तो बड़े नाराज हुए। बोले—'कैसा रुपया? हमने कोई रुपया नहीं लिया।' मैं चुपचाप न चला आता तो पिट जानेका भय था।"

ज्ञाननाथ बोले—'अच्छा मैं खुद जाउँगा।' दो दिन बाद ज्ञाननाथ स्वयं पहुंचे। उस समय तीनों उपस्थित थे। ज्ञाननाथ का स्वागत उदासीनता तथा रुखाई के साथ किया गया। ज्ञाननाथ मिस क्लारा से बोले—'क्लारा, दो महीने हुए पाँच सौ रुपये लायी थीं।'

'कौन? मैं?' क्लारा ने चण्डी रूप धारण करके कहा।

'हाँ, तुम!'

'बिलकुल झूँठ—मुझे क्या और कहीं रुपये मिलते नहीं जो तुमसे लेती। मैं काले असभ्य आदमियों से कर्ज लेना अपमान समझती हूँ।'

'काला! असभ्य!' धारा-प्रवाह अंग्रेजी बोलनेवाला तथा अप-टूडेट फैशन से रहने सहने का अभ्यस्त व्यक्ति असभ्य! ज्ञाननाथ विस्मित होकर क्लारा का मुँह ताकने लगे। कुछ क्षण पश्चात् सँभल कर बोले 'खैर! मैं यहाँ सभ्यता-असभ्यता का निर्णय करने नहीं आया हूँ।' विक्टर बोल उठा—'कैसा रुपया—क्लारा इन्कार करती है तब कैसा रुपया?'

'क्लारा झूठ बोलती है।'

यह सुनते ही क्लारा चीखकर बोली—'इस नेटिव की यह मजाल कि मझे झूठा कहे! विक्टर तुम बैठें सुन रहे हो?' यह कहकर क्लारा

रोने लगी।

विक्टर धीरे से उठा और उसने बड़े इतसे मीनान मुख पर एक घूसा मारा—ज्ञाननाथ कुर्सी से लुढ़क पड़े। ऊपर से तीन चार ठोकरें लगाकर विक्टर बोला—'और रुपया लेगा ?' ज्ञाननाथ उठकर भागे।

ज्ञाननाथ की दाहिनी आँख सूज आयी और काली पड़ गयी। लोगों ने कारण पूछा तो बोले—'दुकान पर चोट लग गयी।' परन्तु एक परिचित बोले—'यह तो ऐसा मालूम होता है कि किसी ने घूँसा मारा है—ऐसा घूंसा बाक्सिग (घूँसेबाजी) जाननेवाला ही मार सकता है और बाक्सिग का प्रचार यूरोपियनों में ही पाया जाता है।'

यह सुनकर ज्ञाननाथ बहुत झेंपे। उनके झेंपने से लोग समझ गये कि ऐसे ही कुछ बात हुई है।

अब आजकल ज्ञाननाथ की अंग्रेजियत कुछ कम होगयी है, क्योंकि उनको इस बात का बड़ा दुख है कि इतने अप टू डेट ढंग से रहने पर भी एक एँग्लो-इण्डियन तक उन्हें असभ्य काला आदमी समझता है। हद हो गयी ! ऐसी अंग्रेजियत से क्या लाभ !

———

चोरी का धन

संध्या हो रही थी। मेलट्रेन तेजी के साथ चला जा रहा था। सेकेण्ड क्लास कम्पार्टमेंन्ट में ४ पुरुष तथा एक स्त्री यात्रा कर रहे थे। पुरुषों में दो वृद्ध, एक अधेड़ तथा एक युवक था। स्त्री युवती और सुन्दरी थी। युवक कोट-पतलून पहिने था, स्त्री तथा युवक एक बर्थ पर थे, दूसरी पर अधेड़ व्यक्ति था— यह भी कोट-पतलून पहिने था। तीसरी बर्थ पर दो वृद्ध थे—इनमेंसे एक शेरवानी अचकन तथा ढीला पाजामा पहिने था, दूसरा चूड़ीदार पाजामा तथा पारसी कोट से सुसज्जित था। दोनों वृद्ध तथा अधेड़ परस्पर बात कर रहे थे—स्त्री तथा उसके साथ का युवक भी धीमे स्वर में परस्पर वार्त्तालाप कर रहे थे।

अधेड़ व्यक्ति कह रहा था—"यह हम लोगों की किस्मत है जनाब जो यह कम्पार्टमेन्ट इतना खाली है वरना आजकल तो खड़े होने को जगह भी नहीं मिलती।"

"नजर न लगाइये साहब! अभी बहुत सफर तय करना है। किसी भी जंकशन पर यह कम्पार्टमेन्ट भर सकता है।" एक वृद्ध ने कहा।

"कुछ भी हो हम लोगों को अब कोई नहीं उठा सकता। हम लोग तो बैठे ही रहेंगे।" अधेड़ ने कहा।

"हाँ यह बात तो ठीक है लेकिन तकलीफ का सामना तो हो जायगा।" वृद्ध बोला।

"तो जनाब, घरसे पैर निकलने पर तो तकलीफ ही तकलीफ है—आराम तो बस अपने घर में ही मिलता है।" अधेड़ ने कहा।

"घर की क्या बात है। लेकिन अगर पैसा पास हो तो बाहर भी आराम मिल सकता है।"

"आजकल रेल के सफर में पैसा भी काम नहीं देता। सेकेण्ड क्लास में बैठे हुए भी कलेजा कांप रहा है कि किसी स्टेशन पर रेला न घुस आवे।" दूसरा वृद्ध बोला।

"पता नहीं यह लड़ाई कब तक समाप्त होगी।"

"कुछ नहीं कहा जा सकता।"

"लेकिन अकस्मात खबर आयगी।" दूसरे वृद्ध ने कहा।

पहला वृद्ध बोला—"हाँ! पिछली लड़ाई में भी यही हुआ था, जब कि लोगों को गुमान भी नहीं था कि लड़ाई समाप्त हो जायगी तब एक दिन अकस्मात् खबर आ गयी कि जर्मनी ने हथियार डाल दिये।"

"बल्कि इस बार तो कुछ आभास भी मिल रहा है कि लड़ाई समाप्त हो रही है। पिछली लड़ाई में तो आभास भी नहीं मिला था।'

"यह लड़ाई तब समाप्त होगी जब गेस छोड़ी जायगी।"

"गेस! गेस की लड़ाई में तो सब पटरा हो जायगा।"

"बिना पटरा हुए यह लड़ाई समाप्त भी न होगी।"

इसी प्रकार की बात-चीत चल रही थी। इधर युवक युवती से कह रहा था—"तुम्हारे मन की थाह नहीं मिलती।"

"बस यही बात रट रक्खी है। भगवान जाने कौनसी थाह लेना चाहते हो।" युवती ने रोष-पूर्वक कहा।

युवक सिगरेट सुलगाने लगा। युवती पुनः बोली—"घर छोड़ा, माँ बाप छोड़े-अब भी मन की थाह नहीं मिलती।"

"घर और माँ-बाप मेरे लिए छोड़े ?" युवक बोला।

"और नहीं तो किसके लिए ?"

"अपने लिए !"

"अपने लिए का क्या मतलब ?"

"तुम्हारी छोड़ने की इच्छा हुई तब तो छोड़े।"

"मेरी इच्छा क्यों हुई। तुम्हारे कहने से छोड़े।"

"किसी के कहने मात्र से कोई इतना बड़ा कदम नहीं उठाता, जब तक कि स्वयं उसकी इच्छा न हो।"

"अच्छा ! अब ऐसी कहोगे ! मैं अपनी इच्छा से घर छोड़कर आई हूँ।"

"तुमने अपने लिए जिसमें सुख माना; जिसमें अपना भला समझा वह तुमने किया। मेरे कहने से कुछ नहीं किया।"

स्त्री मौन होकर युवक का मुँह ताकने लगी। उसकी दृष्टि विषाक्त थी।

"ऐसे देखती हो जैसे खा जाओगी।"

युवक मुस्कराकर बोला।

"मैं क्या खा जाऊँगी—खाओगे तुम !"

यह कहकर स्त्री ने युवक की ओर से मुँह फेर लिया।

(२)

सहसा ट्रेन के पहियों में ब्रेक लगने की घरघराहट सुनाई पड़ी। अधेड़ व्यक्ति बोला—"स्टेशन आया ! यहाँ गाड़ी रुकेगी।"

"कौन स्टेशन है यह ?" वृद्ध ने पूछा। अधेड़ बोला—"आसनसोल होगा।"

कुछ देर पश्चात् गाड़ी स्टेशन पर रुकी । उसके रुकते ही कम्पार्टमेन्ट का द्वार खुला और मुसाफिरों का रेला आया । 'एई कम्पार्टमेन्ट जायगा आछे ! एदिक एशो !' थाक ! थाक ! की मुश्किल ! उठते देवेन ना की ! ओ शाला कुली इधर आय ! अठें आजा ! चल चढ़जा । किसी होर को भी चड़बा दोगे बाबू ! तम तो दरबज्जा रोक के खड़े होगये ।' इत्यादि भिन्न भिन्न प्रकार की बोलियां सुनाई पड़ रही थीं और कम्पार्टमेन्ट भर रहा था । कुछ ही देर में इतने आदमी भर गये कि दो तीन आदमियों को खड़े होने की जगह भी कठिनता से मिल सकी ।

वृद्ध ने अधेड़ से कहा—"देखिये ! क्या से क्या होगया ।"

"जी हाँ ! यह संसार ही ऐसा है कि दम में कुछ से कुछ हो जाता है ।" गाड़ी पुनः चली ! इस समय रात हो गई थी ।

थोड़ी देर में कुछ लोग ऊँघने लगे । युवक भी खिड़की के बाजू के सहारे सिर टेक कर ऊंघने लगा । स्त्री भी गाड़ी की दीवार से टिककर अर्द्धनिद्रित सी होगई ।

कुछ लोग जाग रहे थे और परस्पर बातचीत कर रहे थे ।

इसी प्रकार अगले जंकशन पर गाड़ी पहुँची । गाड़ी के रुकते ही ऊंघते हुए लोग पुनः सजग हो गये । युवक ने आंखें खोलकर पूछा—"कौन स्टेशन है यह !"

"क्या जाने कौन स्टेशन है" एक बोला ।

"ओफ ओह ! यहाँ तो इतनी भी जगह नहीं कि जरा प्लेटफार्म पर जा सकें ।"

"क्या कीजिएगा जाकर ! उतरना हो तो बात दूसरी है ।" एक खड़े हुए व्यक्ति ने कहा ।

"बैठे बैठें पैर अकड़ गये—जरा टहलते ।"

"गनीमत है कि आप बैठें हैं—हमें देखिये ! सुबह तक इसी तरह खड़े रहना पड़ेगा ।"

"सुबह तक तो बैठने की जगह मिल जायगी।"

"क्या ठीक ! इसमें तो सब दूर की सवारियाँ मालूम होती हैं।"

पुनः गाड़ी चली। युवक पुनः सो गया। सहसा एक स्टेशन पर गाड़ी रुकने पर युवक की निद्रा भंग हुई। उसने आँखें मलकर देखा जो लोग खड़े थे वे अब बैठे हुए थे और गाड़ी में पहिले की अपेक्षा कुछ कम भीड़ थी। युवक ने अपनी रिस्टवाच देखी—रात के ढाई बज रहे थे। सहसा उसकी दृष्टि अपने बगल में पड़ी, वहाँ स्त्री नहीं थी बलिक उसके स्थान पर बिस्तर का बण्डल खड़ा हुआ था। युवक ने आंखें मलकर पुनः ध्यान पूर्वक देखा, परन्तु जो पहिले देखा था वही दिखाई पड़ा। उसने कम्पार्टमेन्ट में निगाह दौड़ाई, सब लोग बैठे बैठे ही ऊँघ रहे थे। दोनों वृद्ध तो मौजूद थे, परन्तु अधेड़ सज्जन का कहीं पता न था।

युवक घबरा गया। उसने चिल्लाकर कहा—"अजी साहब, जरा सुनिये !"

दो तीन आदमियों ने आँखें खोलीं। युवक ने पूछा—"यहाँ एक औरत बैठी थी, वह कहाँ गई।"

"हम क्या जाने।" एक ने कहा "हम तो औंघा गये थे-हमें नहीं मालूम !" दूसरा बोला।

युवक घबराकर उठा और प्लेटफार्म पर उतर गया। प्लेटफार्म से कुछ क्षण पश्चात् लौटा। असबाब पर दृष्टि डाली तो ट्रंक, एटेची भी सब गायब ! केवल उसके बिस्तर का बण्डल स्त्री के स्थान पर खड़ा किया हुआ रक्खा था।

एक व्यक्ति ने पूछा—"वह औरत आपके साथ थी ! पिछले जंक्शन पर मैंने उसे उतरते देखा था।"

"और कोई उतरा था।"

"और वह उतरे थे जो आपके सामने बैठे थे।"

"वह अधेड़ से आदमी ?"

"जी हाँ !"

युवक स्तब्ध रह गया। उस व्यक्ति ने प्रश्न किया—"वह औरत आपके साथ थी ?"

युवक बोला—"नहीं !"

"तब आप इतनी चिन्ता क्यों करते हैं।"

"वह मेरा असबाब ले गई।"

"अच्छा !"

"जी हाँ ट्रंक एटेची सब ले गयी। खाली बिस्तर छोड़ गई है।"

"ताज्जुब है कि आपकी आँख नहीं खुली।"

"मैं गाफिल होकर सो गया।"

"कोई ठग स्त्री थी। हम लोग यह समझ रहे थे कि आपके साथ है।"

"नहीं, मेरे साथ नहीं थी।"

"तब आपके पास बैठी क्यों थी ?"

युवक ने पुनः कहा—"मेरे साथ नहीं थी।"

"तो पुलिस में रिपोर्ट कर दीजिए।"

"हां यही करना पड़ेगा।"

यह कह कर युवक ने अपना बिस्तर उठाया और प्लेटफार्म पर उतर गया।

उपर्युक्त घटना को दो वर्ष व्यतीत हो गये। काशी मणिकर्णिका घाट पर स्नानार्थियों का जमघट था। हमारा ट्रेन का परिचित युवक भी स्नान करने के लिए आया था। वह घाटिये के तख्त पर आकर बैठा ही था कि सामने से एक स्त्री तथा पुरुष को आता देख कर चौंक पड़ा। स्त्री वही युवती थी जो मेल ट्रेन से गायब हो गई थी और पुरुष वही अधेड़ व्यक्ति था।

जब ये दोनों युवक के निकट पहुँचे तो युवक ने दूसरी ओर मुँह घुमा लिया। जब ये दोनों आगे बढ़ गये तो युवक उठ कर उनके पीछे हो लिया। स्त्री—पुरुष गलियों में फिरते-फिरते एक धर्मशाला पहुँचे। युवक उनके पीछे लगा हुआ था। वे दोनों तो एक कमरे में घुस गये—युवक धर्मशाला के प्रांगण में खड़ा रहा। कुछ देर इधर उधर देख कर वह बाहर निकल आया और शीघ्रतापूर्वक एक ओर चला गया।

थोड़ी देर में इक्के पर असबाब लादे हुए वह पुनः धर्मशाला आया और प्राँगण के दूसरी ओर वाले कमरे में उसने डेरा जमाया। उसके कमरे से स्त्री-पुरुष का कमरा बिलकुल स्पष्ट दिखाई पड़ता था।

थोड़ी देर में अधेड़ व्यक्ति किसी काम से बाहर चला गया। उसके बाहर जाते ही युवक शीघ्रतापूर्वक स्त्री के कमरे के द्वार पर जाकर खड़ा हो गया।

स्त्री ने उसे देखा—दोनों की निगाह चार हुई। स्त्री नेत्र-विस्फारित करके बोली—"तुम!"

"हाँ मैं! आखिर बदमाश औरत बदमाश होती है। मेरा असबाब कहाँ है?"

"असबाब कैसा?"

"हूँ! अब असबाब कैसा कहोगी मेरे ट्रंक में दो हजार रुपए थे। अटेची में कुछ जरूरी कागजात थे। वे कहाँ हैं?"

"मैं क्या जानूँ कहाँ हैं। मैं तुम्हारा असबाब लाई ही नहीं।"

"तुम भागी क्यों?"

"मेरी तबियत! जब मैं तुम्हारे साथ घर से भाग कर आई थी तब तुमने पूछा कि घर से क्यों भागी।"

"तब तो मुझे कारण मालूम था। पर इस बार भागने का कारण मुझे नहीं मालूम।"

"अपने दिल से पूछो।"

"अपने दिल से क्या पूछूं।"

"तुमने मुझे ताना दिया था कि तुमने अपने लिए घर छोड़ा है। मैंने भी तुम्हें दिखा दिया कि मैंने अपने लिए घर छोड़ा है तुम्हारे लिए नहीं।"

"यह कौन आदमी है।"

"कोई हो तुमसे मतलब।"

इसी समय अधेड़ व्यक्ति लौट आया। युवक उसे देख कर घबरा गया।

अधेड़ व्यक्ति पास आकर बोला—"ओहो आप हैं! आइये तशरीफ रखिए।"

"आपने बड़ी दगा की जनाब।" युवक बोला।

"जी बिलकुल नहीं यह खुद मेरे साथ आईं। मैंने इनको अपने साथ लाने का जरा भी प्रयत्न नहीं किया।"

"अब यह किस हैसियत से आपके साथ है। ब्याही या बैठाली?"

"न ब्याही न बैठाली।"

"तब?"

"मैं तो इसे लड़की समझता हूँ।"

"उफ! इस कदर झूठ! आसमान फट पड़े।"

"आसमान सब जानता है—वह कदापि नहीं फटेगा—इसका आप इत्मीनान रक्खें।"

"तो आपने इसे लड़की बनाकर रक्खा है?"

"मेरे मित्र की लड़की है।"

"आपके मित्र की।"

"जी! इसके पिता मेरे मित्र हैं। यह बात इसे नहीं मालूम थी।"

"तो यह आपके साथ क्यों है?"

"घर नहीं जाना चाहती। मैं इसे अब अपने यहाँ रक्खे हूँ। मैंने

इसका विवाह कर दिया है। ससुराल से विदा करा कर लाया हूँ और घर ले जा रहा हूँ।"

युवक विस्मित होकर बोला—"क्या सच कहते हो !"

"मैं झूठ कम बोलता हूं।"

"अच्छा, मेरा असबाब तो दिलवा दीजिए।"

स्त्री बोली—"रुपए तो मेरे ही थे, मैं अपने ले आई।"

"और वह अटैची ?"

सहसा अधेड़ बोला—"आपके नाम वारण्ट है जरा होशियारी से रहियेगा।"

"ऐं" युवक घबरा कर बोला।

"जी हाँ !"

यह सुनते ही युवक वहाँ से हट आया और तुरन्त ही अपना असबाब लेकर वहाँ से चला गया। उसके चले जाने पर अधेड़ बोला—"इतना झूठ न बोलता तो इससे पिण्ड न छूटता। अब कोई चिन्ता नहीं।"

स्त्री हँस कर बोली—"अच्छा चकमा दिया।"

"लौंडे हैं। खाली इश्कबाजी करना जानते हैं—संसार का कुछ अनुभव नहीं है। एक ही घिस्से में झप खाते चले गये।"

स्त्री हँसने लगी।

लाला की होली

लाला सुन्दरलाल एक साधारण गृहस्थ हैं। वयस चालीस के लग-भग है। परिवार में पत्नी, एक द्वादशवर्षीय पुत्र तथा एक छः सात वर्ष की कन्या है। कपड़े की फेरी लगाकर जीविका चलाते हैं।

लाला जी, जहाँ तक कपड़े के व्यवसाय का सम्बन्ध है, बड़े चलते-पुर्जे हैं। ग्राहक की गाँठ काटने का हुनर अच्छा जानते हैं, परन्तु अन्य सांसारिक विषयों में आपकी बुद्धि बहुधा प्रतिकूल ही रहती है।

होली का त्योहार निकट था। लालाजी अपने द्वार पर बैठे थे। इसी समय एक जवान व्यक्ति उधर से निकला। उसने कहा—"लाला होली आ रही है।"

"आवे सुसरी होली! यहाँ लोगों को खाने को नसीब नहीं हो रहा है, होली कौन मनावे। समय-सुकाल में त्योहार भी अच्छा लगता है। यह त्योहार मनाने का समय है? न खाने का ठिकाना, न कपड़े का।"

"कुछ भी हो! त्योहार तो मनाया ही जायगा, और कुछ न सही तो लँगोटी से ही फाग खेल लेंगे।"

"लंगोटी का भी तो ठिकाना नहीं है।"

"लाला तुम तो ऐसा न कहो—तुम्हारे पास तो कपड़ों के थान धरे हैं।"

"थान धरे हैं तो होली खेलने के लिए? अच्छी कही। न जाने कितनी मुसीबत से तो आजकल कपड़ा मिलता है—सो भी रुपये में चार आने! भीड़ में घन्टों खड़ेरहते हैं तब कहीं दो चार थान मिलते हैं। थोक-वालों के दिमाग ही नहीं मिलते। ब्लैक में लेना चाहो तो चाहे जितना ले लो! अन्धेर!"

"तुम भी तो लाला ब्लैक करते होगे?"

"कौन? हम? हम तो ब्लैक कर ही नहीं सकते। हमारे पास तो जो कुछ है वह सामने रहता है—ब्लैक करें कैसे?"

"होली तो खेलनी ही पड़ेगी।"

"हम तो होली भर घर से निकलेंगे नहीं। इस शहर में पूरा अन्धेर है। सब जगह एक दिन रंग चलता है—यहां चलता है आठ रोज—कुछ ठिकाना है।"

"तो आठ दिन घर से नहीं निकलोगे?"

"क्या करेंगे अपनी दुर्दशा करायेंगे। इतने पुराने कपड़े भी नहीं हैं कि रोज बदलें—और हों भी तो आजकल पुराने कपड़े भी खराब नहीं किये जा सकते—उनसे भी काम लेना पड़ता है।"

"होली तो लाला खेलनी ही पड़ेगी। मुहल्ले वाले मानेंगे नहीं।"

"ऐसा मुहल्ला भी शहर में दूसरा नहीं है। कोई मरे या जिये मुहल्ले वालों को कुछ व्यापता ही नहीं। तीन लोक से मथुरा न्यारी।"

"हमारा मुहल्ला मस्त-मौला मुहल्ला है। कल की चिन्ता नहीं रखता।"

"यह कोई अच्छी बात है?"

"निश्चिन्त रहना तो कोई बुरी बात नहीं है लाला।"

"वाह भाई चतुर्भुज, अच्छी निश्चिन्तता बताई। घर में चूहे डंड पेलें और बाबू जी निश्चिन्त फिरें—क्या बढ़िया निश्चिन्ता है। लेकिन एक बात है—इस दफा रंग अधिक नहीं चलेगा।"

"क्यों?"

"रंग के लिए पैसा कहाँ से आवेगा?"

"सो बात नहीं है। आजकल लोगों के पास इतना पैसा है कि उनकी समझ में नहीं आता कि उसका क्या करें।"

"होगा! हमारे पास तो है नहीं।"

"लाला बड़े बने हुए हो। कपड़े वालों ने तो रकम चीर दी है।"

"रकम चीरी है मिल वालों ने, आढ़तियों ने। हम तो फेरी वाले हैं। जो ब्लैक करते हैं उन्होंने पैसा कमाया है। हमारे पास इतना माल ही नहीं रहता कि ब्लैक कर सकें।"

"खैर लाला, हम क्या जानें कि तुम ब्लैक करते हो या नहीं। हम तो जानते हैं कि इस बार बड़ी घनघोर होली होगी।"

"होगी तो हो, हमारी बला से! हमें तो खेलना नहीं है।"

"अच्छा देखा जायगा।"

"देखा-वेखा नहीं जायगा। हमारे साथ कोई जबरदस्ती करेगा तो अच्छा न होगा।"

"जबरदस्ती का क्या काम। त्योहार तो खुशी का होता है।"

"हाँ! खुशी का रहेगा तभी ठीक रहेगा। जबरदस्ती करने में नुकसान उठाना पड़ेगा। मैं आदमी जरा और तरह का हूँ।"

चतुर्भुज ने कुछ उत्तर न दिया।

(२)

दूसरे दिन चतुर्भुज ने सम्पूर्ण मुहल्ले में यह प्रचार कर दिया कि "लाला सुन्दरलाल इस साल होली नहीं खेलेंगे और जो कोई उन पर रंग डालेगा उससे बुरी तरह पेश आवेंगे।"

यह सुनकर मुहल्ले के कुछ व्यक्तियों ने निश्चित किया कि इस साल लाला पर ही होली उतारी जाय।

जिस दिन से रंग चलना आरम्भ हुआ उसी दिन लाला घर में बन्द हो गये। लोगों ने पुकारा तो बोले ही नहीं। अन्त को लाला जी की पत्नी बोली—

"जवाब तो दे दो! ऐसा भी क्या कि बोलते ही नहीं।"

"तुम क्या जानो। ये बदमाश इस बहाने से मुझे बाहर बुला कर रंग डालना चाहते हैं।"

"तो रंग डाल देंगे तो क्या होगा रंग का तो त्योहार ही है।"

"मैं इस बार त्योहार नहीं मनाऊँगा। मेरे पास ऐसा फालतू कपड़ा नहीं है।"

"फटे पुराने पहिन कर खेल लो।"

"एक दिन की बात हो तो यह भी करें। आठ दिन तक फटे-पुराने कहां से आयेंगे।"

"जैसा तुम समझो करो—काम एक जोड़े कपड़ों से भी निकल सकता है। बाहर निकलो तो उन्हें पहिन लो—घर में आकर सूखने डाल दो—जब सूख जायँ तब फिर पहिन कर बाहर निकलो।"

"यह कवायद हम से नहीं होगी।"

इधर ये बातें हो रही थीं उधर लोग किवाड़ें भड़भड़ा रहे थे। अन्त को लाला ने दो मञ्जिले की खिड़की खोल कर सिर बाहर निकाला और कहा—"आप लोग क्यों परेशान हो रहे हैं, मैं बाहर नहीं आऊंगा।"

"यह बात बेजा है लाला।"

"बेजा हो या कुछ हो—मैं जो निश्चय कर चुका हूँ वही करूँगा।"

लाला तो बातों में लगे थे, इसी समय एक लड़के ने गोबर फेंक कर मारा तो लाला की कनपटी पर छप से पड़ा। लाला उछल पड़े।

लोगों ने कहकहा लगाया। लाला ने खिड़की बन्द करली।

गोबर पोंछते हुए पत्नी से बोले— 'देखा तुम कहती थीं बाहर निकलो। ये बदमाश खाली रंग से थोड़ा ही खेलते हैं। गोबर, कीचड़, जो मिला फेंक मारते हैं। जरा निगाह चूक गई, इससे दाव खा गया। अब तो ये लोग मेरी छांह भी न पायेंगें।"

दूसरे दिन संध्या समय एक व्यक्ति लाला के द्वार पर पहुँचा। उसने लाला को आवाज दी। लाला द्वार पर आये और बिना किवाड़े खोले अन्दर से ही बोले—"क्या है ?"

"इस समय पं० सत्यनारायण के यहाँ गाना-बजाना है सो आपको भी बुलाया है।"

"चल चल अपना काम देख। मैं सब समझता हूँ।"

"क्या समझते हो लाला। रात में कहीं रंग चलता है। आज तक कभी देखा है चलते ?"

"रंग चलाने को मना कौन करता है—कोई आर्डिनेन्स लगा है क्या ?"

"अरे नहीं लाला, खाली तुम्हारे लिए रंग नहीं चलेगा। विश्वास रक्खो। कोई तुम पर रंग डाले तो हमारा जिम्मा !"

यह कह कर वह चला गया।

इधर लाला असमंजस में पड़ गये। जलसे में सम्मिलित होने के लिए भी चित्त भुरभरा रहा था और यह भी सोचते थे कि इसमें कोई चाल न हो। अन्त को पत्नी से सलाह ली "तुम्हारी क्या राय है—जाँय ? रात में रंग तो कभी चला नहीं।"

"मैं कुछ नहीं जानती। जो तुम ठीक समझो करो।"

"न जायेंगे तो बुरा मानेंगे, मुहल्ले का मामला है।"

पत्नी मौन रही।

अन्त को आप अत्यन्त जीर्ण-शीर्ण कपड़े पहिन कर बाहर निकले।

परन्तु चौकन्ने थे। दाँये—बांये देखते-भालते निश्चित स्थान पर पहुँचे।

वहाँ बहुत आदमी जमा थे। सब ने लाला का स्वागत किया।

एक ने पूछा—"लाला! तुम तो बाहर ही नहीं निकलते। क्या मामला है?"

"मामला सब ठीक है। मुझे कोई बेवकूफ नहीं बना सकता।"

"सो तो मालूम है कि आप में कोई कसर नहीं है—कोई बनायगा क्या।"

दस बजे के लगभग लाला वहाँ से उठ कर चले। रास्ते में गली के मोड़ पर पहुँचे तो ऊपर से गोबर का छोंत लाला की खोपड़ी पर गिरा। गोबर पतला था इससे लाला उसमें नहीं गये। अब क्या था लाला बिगड़ गये। सैकड़ों गालियाँ दीं और बोले—"मुझे बनिया समझा है क्या मैं बनिया नहीं हूं।"

कुछ लोग इकट्ठे होगये थे वह कहकहा लगा कर बोले—"आपको बनिया न समझते तो क्या चमार समझते? अब आज पता लगा कि आप बनिया नहीं हैं। तब क्या हैं जरा यह भी बता दीजिए।"

दूसरा बोला—"कोई नीच जाति होंगे। शहर में आकर बनिये बन बैठे।"

इस पर पुन अट्टहास हुआ। लाला बौखला कर वहां से भागे।

(३)

दूसरे दिन कई आदमी लाला के द्वार पर पहुँचे और उन्होंने लाला को पुकारा। पहले तो लाला सनके ही नहीं परन्तु फिर किवाड़ों के पीछे आकर बोले—"क्या है? क्यों प्राण खाये हो। तुम लोग पक्के दग़ाबाज हो, अब मैं तुम लोगों की कोई बात न मानूँगा।"

"वह तो लाला संयोग की बात थी। आप पर जानबूझ कर नहीं फेंका गया और हम लोग दगाबाज क्यों—किसी ने रंग तो छोड़ा ही नहीं।"

"रंग छोड़े लेते तो अच्छा था, गोबर मिट्टी का कौन खेल है।"

"ठीक बात है। हम लोग तो खुद गोबर मिट्टी का खेल बुरा समझते हैं। मगर लाला एक बात तो बताओ, मुहल्ले में यह क्या उड़ रहा है कि लाला बनिये नहीं हैं।"

"बनिये नहीं है तो क्या तुम्हारे बाप हैं ?',

"लोग कहते हैं कि आपने खुद कहा कि आप बनिये नहीं हैं।"

"हमने कुछ भी कहा हो, तुमसे मतलब ?"

"अच्छा खैर जाने दीजिए। लेकिन बाहर तो निकलिये—क्या घोंसले में घुसे अण्डे से रहे हो।"

"बाहर निकलकर तुम बदमाशों से अपनी छीछालेदर कराऊँ।"

लोगों ने बहुत कहा सुना मगर लाला बाहर न निकले।

तीसरे दिन लाला दिन भर घर के अन्दर बन्द रहे। चौथे दिन लोगों ने सलाह की कि होली के झंझे समाप्त हुए जा रहे हैं। लाला को किसी प्रकार बाहर निकालना चाहिए। लाला संध्या समय चिराग जले पश्चात निकलते थे और घंटा आध घंटा घूम फिर कर पुनः घर आ जाते थे।

सबेरे नौ बजे का समय था। लाला की गली में सन्नाटा था। लाला पत्नी से बोले—"आज बड़ा सन्नाटा है, कोई दिखाई नहीं पड़ता।"

"चार रोज होगये हैं। लोगों का शौक पूरा हो गया। अब मेले वाले दिन रंग चलेगा।"

"हूँ! लेकिन अभी बाहर निकलना ठीक नहीं। मेरे तो सब दुश्मन हैं।"।

इसी समय आवाज सुनाई दी "सस्ता माल लगा दिया है। आलू-घुइयां एक आने सेर !"

लाला के कान में जो ये शब्द पड़े तो पत्नी से बोले—"एक आने

सेर आलू घुइयाँ बडी सस्ती हैं।"

"सडी-बडी होंगी।"

लाला ने खिड़की खोलकर देखा तो दोनों चीजें अच्छी दिखाई पड़ीं।

कुंजड़े से पूछा—"कितने सेर दिये ?"

"एक आने।"

"तीन पैसे देओगे ?"

"एक आने का भाव लगा दिया है तब भी सबर नहीं।"

"तीन पैसे देओ तो सब तौल देओ ! कितने होंगे !"

"दस दस सेर होंगे, दोनों।"

"तो हम सब ले लेंगे।"

कुंजड़े ने कुछ आगे बढकर एक मकान के चबूतरे पर झल्ली उतारी और बोला—"खैर ! आइये तीन पैसे ही दीजिएगा। मगर सब तौल-वाना पड़ेंगे।"

"हाँ सब ले लेंगे।"

"अच्छा तो आइये।"

लाला ने इधर उधर देखा। गली में बिलकुल सन्नाटा था। पत्नी से बोले—"इस बखत तो कोई दिखाई नहीं पड़ता। बड़ा सस्ता माल मिल रहा है।"

यह कह कर आपने कपड़ा लिया और बाहर आये। कुंजड़े से बोले—"जल्दी तौल !"

कुंजड़ा तौलने लगा। सहसा न जाने कहाँ से छः सात आदमी निकल आये। उन्होंने लाला को घेर लिया।

कुंजड़ा झल्ली उठाकर चल दिया।

इधर एक ने पुकारा—"लाओ रंग और कालिख भी लेते आना।"

लाला बौखला कर बोले—"यह-यह क्या !"

"तीन पैसे सेर आलू और घुइयां, ऐसा अन्धेर ! कुँजड़े को लूटे ले रहे थे।"

"उसने खुद आवाज लगाई थी ! मैं काहे को लूटे ले रहा था।"

इसी समय लड़के पिचकारी लेकर आगये। लाला लगे हाथ जोड़ने !

"भइया ! माफ करो। क्यों परेशान करते हो। हमारे पास और कपड़े नहीं हैं।"

लाला यह कह ही रहे थे कि चारों ओर से रंग पड़ने लगा। एक ने कालिख से मुँह पोत दिया।

लाला बोले—'मैं खून कर डालूँगा, मैं एकाध की जान ले लूँगा।'

लोगों ने लाला को उठाकर टाँग लिया और लेकर चले। एक आदमी चिल्लाता जाता था—"जो घर में छिप कर बैठे उसकी यही दशा।"

लाला चिल्ला रहे थे। कभी खुशामद करते थे, कभी धमकाते थे कि "तुम सब पर मुकदमा चलाऊँगा।"

अन्त को लाला मुहल्ले भर में घुमाये गये और उनकी बुरी दशा की गई। छूटकर घर पहुँचे तो पत्नी ने कहा—"तुम तो आलू लेने गये थे।"

लाला बोले—"गये थे हरिभजन को ओटन लगे कपास ! यह मुहल्ला अब रहने काबिल नहीं रहा। यहाँ गुण्डों का राज्य हो गया है। बस अब किसी दूसरे मुहल्ले में चलकर रहेंगे।

यह कहकर लाला नहाने चले गये।

———

ईश्वरीय दंड

मेरे एक परिचित के पिता का अस्पताल में आपरेशन हुआ था। मैं तीसरे-चौथे दिन उनको देखने जाया करता था। जिस स्थान पर विजय बहादुर के पिता का 'बेड' था उसके निकट ही एक 'बेड' पर एक व्यक्ति पड़ा हुआ था। इसकी उम्र ५० के लगभग थी, शरीर दुबला-पतला, वर्ण साँवला, नखशिख साधारण। मैंने उसे एक साधारण रोगी समझा था, परन्तु विजय बहादुर ने बताया कि 'यह बड़ा विचित्र रोगी है।'

मैंने पूछा—"इसमें क्या विचित्रता है?"

"इसे कोई रोग नहीं है।"

"मजाक करते हो क्या—रोग नहीं है तो यहाँ क्यों पड़ा है?"

"इसे कोई शारीरिक रोग नहीं है।"

"तो मानसिक रोग होगा।"

"हाँ ऐसा ही जान पड़ता है।"

"तब तो रोग है, मानसिक रोग भी तो रोग है।"

"यह समझता है कि इसे तमाम दुनिया भर के रोग हैं। कभी

इतनी जोर से चिल्लाता है कि देखने—सुनने वाले समझें कि इसे कोई घोर पीड़ा हो रही है।"

"पीड़ा होती होगी।"

"बिलकुल नहीं। यदि होती है तो कल्पना में—प्रत्यक्ष कुछ नहीं।'

"इसका पता कैसे लगा ?"

"इसकी हरकतों से। चिल्लाते चिल्लाते एकदमसे शांत हो जायगा और हँसने लगेगा या गाने लगेगा अथवा बात करने लगेगा।"

"पागल तो नहीं है।"

"पागल होता तो पागलखाने भेजा जाता यहाँ क्यों रक्खा जाता। बातों से भी पागल नहीं मालूम होता। बड़ी बुद्धिमानी की बातें करता है।"

हम दोनों ये बातें कर ही रहे थे कि उक्त व्यक्ति चिल्लाने लगा—"अरे दइया! अरे बाप रे! अरे मरा, हायरे!" इस प्रकार वह इतने जोर से चिल्लाने लगा कि दो तीन नर्सें दौड़ीं। उन्होंने आकर उसे सँभाला। किसी ने उसका सिर सँभाला, किसी ने छाती सहलाना आरम्भ किया। एक नर्स कहने लगी—"क्यों चिल्लाते हो, कोई तक-लीफ नहीं है। घबराओ नहीं! तुम तो बिलकुल अच्छे हो।"

सहसा वह व्यक्ति मुस्कराने लगा और बोला—"हाँ तकलीफ तो कोई नहीं है। बस रहने दो मैं ठीक हूं।"

नर्सें उसे शान्त करके चली गईं।

मैंने कहा—"विचित्र रोग है इसे।"

विजय बहादुर बोला—"कभी कहेगा—'मेरे शरीर में फोड़े होगये हैं इन्हें अच्छा करो नहीं मैं मर जाऊंगा।' कभी कोई बीमारी बता देगा कभी कोई। कोई शारीरिक रोग न होते हुए भी इसे इतना कष्ट होता है कि शायद ही किसी रोगी को होता हो।"

उसका वृत्तान्त सुनकर मुझे उससे वार्तालाप करने की उत्सुकता

उत्पन्न हुई। मैंने उससे पूछा—"क्या मैं इससे बात कर सकता हूँ?"

"बिना आज्ञा के कोई भी इससे बात नहीं कर सकता।"

"किसकी आज्ञा—इसके सम्बन्धियों की?"

"सम्बन्धी! इसके कोई नहीं हैं, बिलकुल अकेला है।"

"यह कैसे मालूम हुआ।"

"न इसका कोई सम्बन्धी कभी आया, न कोई इसकी खोज-खबर लेता है। इसके पास रुपया बहुत है। चेक-बुक सिरहाने रखे रहता है। कीमती दवाओं का तो अस्पताल में ठिकाना नहीं। अतएव ऐसी दवाओं के लिए तुरंत चेक काट देता है। नर्सों और डाक्टरों को भी खूब खिलाता पिलाता है। एक दिन अस्पताल के 'स्टाफ़' भर को चाय-पार्टी दी थी—दो सौ रुपये खर्च कर दिये। फल मँगाता है तो इतने कि इस 'रूम' के सब रोगियों को, नर्सों को, डाक्टरों को खूब बाँटता है। अब इसके फल आते ही होंगे।"

"भई मैं इससे अवश्य बात करूँगा—किसकी आज्ञा लेनी पड़ेगी?"

"एसिस्टेंट सर्जन की। मि० भारद्वाज हैं उनसे आज्ञा ले लो।"

"अभी जाता हूँ।"

"वह यहीं आते होंगे—उनके 'राउण्ड' का समय हो गया है।"

(२)

कुछ क्षण बीतने पर एक यूरोपियन नर्स कमरे में प्रविष्ट हुई। यह 'हेड नर्स' थी। मुझे देख कर वह बोली—"सर्जन साहब आते हैं—तुम बाहर जाओ।" विजय बहादुर ने कहा—"यह मेरे भाई हैं, यह यहीं रहेंगे।"

कुछ देर पश्चात ही सर्जन भारद्वाज कमरे में प्रविष्ट हुए। उनके साथ दो डाक्टर तथा कुछ नर्सें थीं। प्रत्येक 'बेड' के पास जाकर वह रोगी को देखते और नर्सों से दो-एक प्रश्न करके आगे बढ़ जाते। जब उस विचित्र रोगी के पास पहुँचे तो वह उठ कर बैठ गया। उसके

उठ कर बैठने के ढंग से यह स्पष्ट प्रतीत होता था कि उसे कोई रोग नहीं है। डाक्टर भारद्वाज ने उससे मुस्करा-कर पूछा"क्या हाल है?"

"बहुत अच्छा! डाक्टर साहब मैं आप सब लोगों को एक 'डिनर' देना चाहता हूं। उसका प्रबन्ध करवा दीजिए। किसी बढ़िया होटल को आर्डर दीजिए।"

डाक्टर भारद्वाज हँस कर बोले—"अभी नहीं! आप अच्छे होकर यहां से जाँय तब।"

"तब तो बहुत बढ़िया होगा—तब तक एक छोटा-मोटा हो जाय।"

"अच्छा! अच्छा! जल्दी क्या है।"

इसी समय उसके फलों का टोकरा आ गया। कम से कम दस-बारह रुपये के फल थे—सेब, सन्तरे, केले, इत्यादि जितने मौसमी फल थे सब मौजूद थे। वह व्यक्ति 'डिनर' की बात छोड़ कर फल देखने लगा। डा० भारद्वाज से बोला—"लीजिए डाक्टर साहब फल खाइये।"

डाक्टर साहब बोले"इस समय मैं ड्यूटी पर हूँ।"

यह कह कर वह आगे बढ़ गये। वह व्यक्ति बोला–"अच्छा आपके आफिस में भेजवा दूंगा।"

डाक्टर साहब जब उस कमरे से जाने लगे तो मैं लपक कर उनके पास पहुँचा और बोला—"क्षमा कीजएगा—मैं एक मिनिट के लिए आप से कुछ बात करना चाहता हूं।"

डाक्टर साहब ठिठुक गये और बोले—"कहिये?"

"क्या मैं इस मरीज से थोड़ी देर बात कर सकता हूँ।"

डाक्टर साहब ने पूछा—"आप कौन हैं?"

मैंने अपना परिचय दिया। परिचय सुनकर डाक्टर साहब मुस्कराते हुए बोले—"ओह! अच्छा आप मेरे आफिस में चल कर बैठिये, मैं अभी राउण्ड लगा कर आता हूँ।" यह कह कर उन्होंने एक नर्स से

कहा—'-आपको हमारे आफ़िस में पहुँचा दो।"

मैं नर्स के साथ चला। नर्स एक हिन्दुस्तानी ईसाई युवती थी। वह बोली—"आप उससे क्या बात करेंगे, उसे कुछ बीमारी नहीं है।"

"इसीलिए तो बात करना चाहता हूँ !"

"अच्छा ! लेकिन वह बात करे तब !" नर्स ने किञ्चित मुस्कराकर कहा।

"क्या बात नहीं भी करता ?"

"मनमौजी आदमी है। कहिये घंटों बात करता रहे और चुप्पी साध ले तो घन्टों किसी से बोले नहीं।"

"जब इसे कोई रोग नहीं है तो इसे अस्पताल में रहने क्यों दिया जा रहा है।

"एक तो इसे रोग है, यदि उसे रोग कहा जाय, तो वह अभी अच्छा नहीं हुआ। दूसरे सब काम अपने पैसे से करता है। खाता-पीता अपना है, दवाएँ सब स्वयं ही मँगाता है। अस्पताल में पड़ा है, बस केवल इतनी बात है।"

"आप लोगों को देख भाल तो करनी ही पड़ती है।"

"उसका भी हमको बदला मिल जाता है। हम तो चाहते हैं कि यह यहाँ से कभी न जाय।"

"अच्छा यह बात है।" मैंने हँस कर कहा।

ये बातें करते हुए मैं आफ़िस पहुँच गया। नर्स मुझे वहां बिठा कर चली गई।

लगभग बीस मिनिट मैं अकेला बैठा रहा। बीस मिनिट पश्चात डाक्टर साहब कमरे में आये। मुझसे मुस्कराकर बोले—"आपको बड़ी देर प्रतीक्षा करनी पड़ी।"

"कोई बात नहीं।"

डाक्टर साहब अपनी कुर्सी पर बैठ कर बोले—"मैं आपको जानता

हूँ। आपके लेख कभी कभी पढ़ने को मिलते रहते हैं। हाँ तो आपको इस रोगी में किसी 'स्टोरी' के प्लाट की गंध मिल रही है।"

"स्टोरी का प्लाट मिले या न मिले परन्तु ऐसे विचित्र व्यक्ति के सम्बन्ध में जानने की उत्सुकता तो अवश्य है।"

"लेकिन आप उससे बात करके कुछ भी न जान सकेंगे।"

"क्यों ?"

"वह अपना सच्चा हाल किसी को नहीं बताता। केवल मुझे उसने अपना जीवन-वृत्तान्त बताया है।"

"हाँ मैं जीवन-वृत्तान्त ही जानना चाहता हूँ।"

"मैं समझ गया कि आप क्या चाहते हैं। लेकिन वह आप उससे कदापि न जान सकेंगे।"

"तब फिर आप ही कृपा करें।"

"लेकिन यह शर्त है कि मैं इसका परिचय आपको नहीं बताऊंगा।"

"खैर, मुझे इसका नाम — धाम जानने की उत्सुकता नहीं। मैं तो इसके और इसके रोग के सम्बन्ध में जानना चाहता हूँ। इसे क्या रोग है ?"

"इसका रोग संसार का कोई डाक्टर नहीं बता सकता। अधिक से अधिक यह कहा जा सकता है कि इसे मानसिक रोग है। लेकिन मेरी अपनी निजी राय है कि इस पर ईश्वर की मार है।"

"ईश्वर की मार कैसी ?"

ईश्वर की मार ऐसी कि प्रत्यक्ष में कोई रोग न होने पर भी यह इतना कष्ट पा रहा है कि जितना कोई भी रोगी पा सकता है।"

"ईश्वर की मार से आपका क्या तात्पर्य है ?"

"आप पहले इसका जीवन-वृत्तान्त सुन लें फिर स्वयं ही सब समझ जाँयगे। यह एक लक्षा-धीश बाप का एकलौता बेटा है। लाड़-प्यार में पलने के कारण इसकी संगत खराब हो गई। केवल मिडिल पास करके इसने पढ़ना छोड़ दिया, यद्यपि इसका ज्ञान किसी ग्रेज्युएट से कम नहीं है। अंग्रेजी खूब फर्राटे से बोलता है और 'जनरल नालेज (विभिन्न विषयों का ज्ञान) भी अच्छा है। पिता की मृत्यु पर एकमात्र पैतृक-सम्पति का अधिकारी हुआ बस उस समय से इसका असली जीवन आरम्भ हुआ। चोरी, डकैती, गिरहकटी इत्यादि जितने धन प्राप्त करने के अनुचित साधन हैं उनको छोड़ कर ऐसा कोई पाप नहीं जो इसने न किया हो। अपनी पहली पत्नी को इसने विष देकर मारा। फिर दूसरा ब्याह किया।थोड़े दिन पश्चात उसे त्याग दिया।वह टी०बी०ग्रस्त होकर मरी। तीसरा विवाह किया उसे भी घोर कष्ट दिये—अन्त को वह भी चल बसी। एक पुत्र एक कन्या थी वे भी इसकी लापरवाही के कारण रोगग्रस्त होकर चल बसे। शराब—कबाब तथा वेश्या-गमन बेहिसाब किया। इसके अतिरिक्त न जाने कितने भले घरों की बहू-बेटियों का इसने सतीत्व बिगाड़ा। कभी फुसलाकर, कभी बलात्कार से, न जाने कितने गर्भ इसने गिराये, न जाने कितनों को इसने रोटी तक से मोह-ताज कर दिया। अपनी जमीदारी में इसने बड़े अत्याचार किये। अब यह दशा है कि इसका कोई परिचित भी इसके पास नहीं फटकता। संसार में कोई भी इसका हितैषी नहीं।"

बड़ा विकट पापी है। परन्तु रुपया तो अब भी इसके पास काफी जान पड़ता है।"

"रुपया बहुत हैं। पानी की तरह रुपया बहाने पर—यहाँ तक कि जमींदारी जायदाद सब बिक गई, बैङ्क में जो रुपया था वह भी खर्च हो गया—इसके पास इस समय भी एक लाख से ऊपर नकद रुपया है।"

"इसके अर्थ तो यह हुए कि बहुत ज्यादा रुपया था।"

"जी नहीं ! मैंने कहा न कि बैंक का सब रुपया खर्च हो गया था। परन्तु एक मकान बनवाते समय इसे उसमें गड़ा धन मिल गया। दो लाख अशर्फ़ियाँ मिलीं। उसमें से भी एक लाख के लगभग खर्च कर दिया और केवल तीन-चार बरस में। अब इसके पास केवल उसमें का बचा रुपया तथा वह मकान जिसमें से इसे धन मिला था शेष रह गया है। परन्तु अब इसे यह रोग लग गया है।"

"तब तो सचमुच इस पर ईश्वर की मार है।"

"पापों का फल देर-सबेर मिलता अवश्य है। इसकी दशा देखकर मुझे इस बात पर पूर्ण विश्वास हो गया है। ईश्वर की लीला तो देखिये—शरीर बिलकुल नीरोग फिर भी केवल कल्पना द्वारा यह इतना कष्ट भोग रहा है कि उसका वर्णन नहीं किया जा सकता।"

"सम्भव है इसे क्षणिक पीड़ा होती हो।"

"सम्भव है ! कुछ कहा नहीं जा सकता। यदि पीड़ा होती है तो शरीर की किसी गड़बड़ी के कारण न होकर किसी अदृश्य प्रभाव या शक्ति के द्वारा उत्पन्न की जाती है। क्योंकि पीड़ा का फिट अकस्मात आता है और अकस्मात ही चला जाता है। तीन बार इसकी 'एक्सरे' परीक्षा की जा चुकी है कि सम्भव है कोई अन्दरूनी गड़बड़ी हो, परन्तु कहीं कोई चिन्ह नहीं मिलता।"

मैं कुछ देर स्तम्भित बैठा रहा। तत्पश्चात मैं डाक्टर को धन्यवाद देकर विजय बहादुर से विदा लेने के लिए पुनः उसके पास गया। उस समय वह व्यक्ति 'बेड' पर बैठा सन्तरा छील रहा था और विजय बहादुर से वार्तालाप कर रहा था। मुझे देख कर उसने विजय बहादुर से मेरा परिचय पूछा। उसने बताया। वह बोला—"ओहो, आपको तो मैं जानता हूं। लीजिए फल खाइये।"

मैंने कहा—"मैं घर जारहा हूँ।"

"लीजिए ! लीजिए !" कह कर उसने तीन चार सन्तरे, तीन चार सेब और केले मेरी ओर बढ़ाये।

विजय बहादुर बोला—"ले लो !"

"इतने मैं कैसे ले जाऊँगा।" यह कह कर मैंने एक सेब, एक सन्तरा और एक केला ले लिया और चल दिया।

बाहर आकर मैंने तीनों फल अस्पताल के भंगी को दे दिये। ऐसे व्यक्ति का धान्य खाना मुझे उचित नहीं जान पड़ा।

अहिंसा

विनायकप्रसाद नम्रतापूर्वक बोले—"क्यों किसी को कोसती हो ? यह तो हिंसा है।"

विनायकप्रसाद की पत्नी बोली—"तुम्हें सब हिंसा ही दिखाई देती है। चाहे सरबस बिगड़ जाय पर तुम अपनी हिंसा ही लिये बैठे रहोगे। जब भूखे मरने पर नौबत आयगी तब यह हिंसा क्या काम देगी ?"

—"कुछ भी हो-हम अपना सिद्धांत थोड़ा ही बदल देंगे।"

इसी समय एक नवयुवक आया। उसे देखते ही स्त्री ने पूछा-"क्या हुआ ?"

—"होना क्या है ? पिता जी की अहिंसा से सब काम बिगड रहा है। दुश्मनों को पता चल गया है कि पिता जी इस मामले में कुछ न करेंगे इसलिए वे और शेर हो रहे हैं ! लोगों ने बहुत समझाया पर वे एक न माने। अब आज कल जमाना बदल गया है। लोग समझाने से नहीं मानते। आजकल तो बिना जूते बात किये बात ही नहीं चल सकती। सीधी उङ्गलियों से भी कहीं घी निकलता है ?"

—"यही तो मैं भी कहती हूँ, पर इन्हें न जाने क्या झख सवार है।"

—"खैर मैं अब इनकी एक न सुनूँगा। बहुत दिन इनकी बात मानी। उसी का यह नतीजा है कि आज सड़े सड़े आदमी हमें आँखें दिखाने लगे हैं।"

विनायकप्रसाद बोले—"तू अभी नासमझ है, तू अहिंसा के बल को नहीं जानता।"

—"भाड़ में गई तुम्हारी अहिंसा। महात्माओं की नकल करने चले हैं। समरथ को नहिं दोष गुसाईं। वे समरथ हैं, उन्हें सब सोभा देता है। हम जो अहिंसा लेकर बैठें तो लोग हमें कच्चा ही चबा जायं।"

—"परमात्मा जब तक अनुकूल है तब तक कोई बाल भी बांका नहीं कर सकता। सत्य पर डटे रहो—मन, वचन, कर्म अहिंसक रहो, ईश्वर अवश्य सहायता करेगा।"

—पिता जी आप अपने यह उपदेश अपने पास रखिए। आपके उपदेश सुनते सुनते तो यह तबाही की नौबत आ गई कि आज हमारी जगह—जमीन दूसरे दाबे ले रहे हैं।"

—"तो आखिर तुम कर ही क्या सकते हो।"

—"जब तक हमारी लाठी में बल है तब तक हम सबकुछ कर सकते हैं।"

—"हरे राम! राम! लाठी-डंडा चलाने में तो बड़ा खतरा है बेटा।"

—"तुम डरते हो इसीलिए अहिंसा की आड़ लिए बैठे हो। ऐसे अवसर पर अहिंसा का राग अलापना घोर कायरता है। मैं कायर नहीं हूँ पिता जी! मैं इस प्रकार जलील होने की अपेक्षा मरना और मारना अधिक अच्छा समझता हूँ।"

—"परन्तु मारने मर जाने से भी क्या तुम्हारा मतलब सिद्ध हो जायगा ?"

—"हो क्यों न जायगा और नहीं भी होगा तो कम से कम नाम तो हो जायगा कि अमुक ने अपने अधिकारों के लिए प्राणों का भी मोह न किया।"

—"तू समझाने से नहीं मानेगा। अच्छा तेरी इच्छा हो सो कर। परमात्मा की जो इच्छा होगी वही तो होगा।"

—"हाँ ! हाँ ! होने दो ! मैं इन बातों से नहीं डरता। परसों वे बाग पर कब्जा करने जायंगे तब देखूंगा। या तो वही रहेंगे या मैं ही रहूँगा।"

बिनायक प्रसाद वहाँ से टल गये। युवक अपनी माता से बोला—"देखा ! इन्हें बुढ़ापे में क्या झख सवार हुई है। जवानी में तो कभी नाक पर मक्खी नहीं बैठने दी। बात बात पर लाठी निकाल लेते थे अब बुढ़ापे में अहिंसा लेकर बैठे हैं। खुद चाहे जो करें, पर मुझे ही मना करते हैं—यह मजा देखो !"

माता बोली-"क्या कहूं। इनकी बुद्धि को जाने क्या हो गया। ऐसे जो अपनी चीज छोड़ बैठें तो बस हो चुका।

"भला देखो तो।"

—"पर एक बात मैं भी कहूँगी, तू तो अकेला है और वे अपने घर तीन जने हैं तू उनसे कैसे पार पावेगा ?"

—"मैं अकेला ही सब के लिए काफी हूँ। तुम देखना तो। और मेरा एक मित्र भी तो हैं वह भी मेरे साथ रहेगा।"

—"भगवान दया करें मेरा तो जी न जाने कैसा कैसा हो रहा है। भगवान दाढ़ी जारों का नास करे-घर में दिया जलाने वाला न रहे।"

—"परमात्मा चाहेगा तो ऐसा ही होगा।"

(२)

पं० विनायक प्रसाद एक साधारण कृषक हैं। दस बीघा भूमि की खेती करके अपना निर्वाह करते हैं। उनका एक आम का बाग भी है। गांव के एक व्यक्ति से उन्हाने एक बार चालीस रुपये का ऋण लिया था। विनायकप्रसाद उस ऋण को समय पर अदा नहीं कर सके अतः वह रकम सूद के कारण बढ़ कर सत्तर के लगभग हो गई।

विनायकप्रसाद ने इसमें से बीस रुपये तो अदा किये और शेष के लिये मोहलत माँगी। पर ऋणदाता ने मोहलत देने से इन्कार कर दिया और कहा कि, "यदि एक महीने में रकम अदा न कर दोगे तो तुम्हारे आम के बाग पर कब्जा कर लेंगे।" विनायक प्रसाद ने जमींदार से फरियाद की, परन्तु जमीदार ने इस मामले में हस्तक्षेप करने से इन्कार कर दिया, क्योंकि जमींदार ऋणदाता का पक्षपाती था। अन्त में विनायक प्रसाद चुप होकर बैठ रहे और यह निश्चय कर लिया कि यदि ऋणदाता बाग पर अधिकार करे तो करले वे कुछ न बोलेंगे। परन्तु उनका पुत्र शिवप्रसाद जिसकी अवस्था २४, २५ वर्ष की थी पिता की इस नीति से सहमत न हुआ। उसने निश्चय किया कि जब तक शरीर में प्राण हैं तब तक बाग पर कब्जा न होने दूँगा।

जिस दिन बाग पर कब्जा होने वाला था उसके एक दिन पूर्व शिव-प्रसाद गाँव के मुखिया के पास पहुँचा। मुखिया एक ठाकुर था। शिव-प्रसाद को देख कर मुखिया बोला—"पाय लागे पण्डित। आओ कहो क्या समाचार है?"

शिवप्रसाद बैठते हुए बोला—"मुखिया दादा! कल बच्चनसिंह हमारे बाग पर कब्जा करेंगे।"

—"सो तो करेंगे ही! उनका रुपया है।"

—"रुपया उनका गले बराबर है पर बाग पर कब्जा करना तो न्याय विरूद्ध है। वह अदालती कार्रवाई कर सकते हैं। बाग पर कब्जा

करने का उनका कोई अख्तियार नहीं है।"

—"सो तो ठीक है। पर वह नहीं मानते।"

—"यह तो अन्धेर है मुखिया दादा। आप उन्हें समझाइये।"

—"मैं तो तुम्हारे पिता के कहने से पहले ही समझा चुका।"

—"पर वह नही माने! जमींदार की शह पाये हुए हैं फिर भला क्यों मानने लगे।"

—"आपकी मुखियागीरी में ऐसा अन्याय न होना चाहिए।"

—"मुखिया ससुर की कोई सुनता है।"

—"ता कल फौजदारी होगी, यह भी समझ लीजिए।"

—"फौजदारी होय चाहे गाँव में आग लग जाय हमारी बला से। जब हमारी कोई सुनता ही नहीं तो क्या करें प्राण देदें।"

—बीस रुपए हमने दे ही दिये हैं, फसल गड़बड़ हो गई, नहीं तो और अधिक दे देते। अब भी जो बाकी है सो अगली फसल में दे देंगे। इस बार फसल का रंगढंग अच्छा है, परमात्मा ने चाहा तो सब रुपया फेंक देंगे।"

—"भइया, यह सब हम कह चुके, तुम्हारे पिता जी कह चुके। पर उनकी नीयत खराब है उनका दाँत बाग पर है-सौ बात की एक बात यह है।"

—"बाग तो, मुखिया दादा, वह पा नहीं सकते, यह आप लिख लेओ। हमारी लहास गिर जायगी तब उनको बाग मिलेगा।"

—"तुम्हारे पिता ने भा थोड़ी गलती की। उन्होंने कह दिया कि अच्छा बाग पर कब्जा कर लेओ। गाँव में भी चारों तरफ कहते फिरते हैं कि हम तो बोलेंगे नहीं, अहिंसावादी हैं वह जो चाहें करें। इससे बच्चन सिंह और भी चढ़ गए।"

—"बुढ़ापे में अहिंसा लेकर बैठे हैं। वही मसल है बूढी पतुरिया, तुलसी की माला।"

मुखिया हंसने लगा। हँसते हुए बोला—'-बात तो ठीक ही कहते हो। यही बिनायक हैं जो बात बात पर लाठी निकालते थे। आज अहिंसा लेकर बैठे हैं। बात यह है बेचारे बूढ़े है, निर्बल हैं, इसीलिए अहिंसावादी बन गए।"

—"पर मैं तो बूढ़ा नहीं हूँ, मुझे क्यों मना करते हैं ?"

—"तुम उनके एकलौते लड़के हो। तुम्हें कुछ होगया तो वह किसके सहारे जियेंगे। इसी मारे मना करते हैं।"

—"तो मुखिया दादा, ऐसे जीने से तो मरना भला है, जो हमारे रहते कोई हमारी चीज जबरदस्ती छीन ले।"

—"है तो यही बात पण्डित ! जहाँ तक हो सके धीरज से मामला तय कर लो।"

—"मैं तो तैयार हूँ पर वह मानें भी।"

—"अच्छा देखो मैं एक दफा फिर कहके देखूंगा।"

-"ऐसा कर देखो दादा,तो बड़ा उपकार हो। हमारी नियत खराब नहीं है। हम उनको पाई पाई दे देंगे; पर इस समय नहीं है। हमने यह भी सोचा था कि किसी से ऋण लेकर उन्हें दे देंगे, पर इस समय ऋण भी नहीं मिलता।"

—"अच्छा मैं उनसे बात करूंगा।"

—"तो मैं आपसे कब मिलूँ ?"

—"संध्या को मिलना।"

—"अच्छी बात है।"

(३)

परन्तु जब शाम को शिवप्रसाद मुखिया से मिला तो उसे मालूम हुआ कि बचनसिंह किसी भी प्रकार राजी नहीं होते और कल वह बाग पर कब्जा करना निश्चय कर चुके हैं।

रात में शिवप्रसाद अपने मित्र विन्दचरण के पास पहुँचा। विन्दा-

चरण ने उसे देखते ही पूछा कहो, क्या हुआ ?"

—"वह ससुरा किसी तरह नहीं मानता।"

—"नहीं मानता ?"

—"नहीं !"

—"तब फिर क्या होगा ?"

—"होगा क्या ! साथ देओगे ?"

—"साथ देने से हमने इन्कार कब किया है।"

—"देखो बिन्दाभाई। गाँव में तुम ही हमारे सच्चे मित्र और सहायक हो। तुम पर हमें जितना भरोसा है उतना हमें इस संसार में किसी पर नहीं है।'

—"तो कहता तो हूँ भइया कि मैं सब तरह हाजिर हूँ।"

—"कल लाठी चलेगी और जान का खतरा है यह समझ लेओ।''

—"कुछ चिन्ता नहीं। चलने दो, तैयार, देख लेंगे।"

—"तो अब हम जाते हैं सबेरे रहना।"

—"हाँ ! हां !"

शिवप्रसाद चला आया। घर पहुँचा तो पिता ने पूछा—"बच्चनसिंह ने क्या कहा ?"

"वह किसी तरह नहीं मानते।"

"तो क्या होगा ?"

"कल जो होगा देख लेना।"

—"तुम सबेरे घर से न निकलना समझे।'

"हाँ ! सो तुम घर में बैठे रहना हम तो जाँयगे—देखें कौन ससुरा बाग पर कब्जा करता है।'

"तो बाग के लिए प्राण देओगे ?"

—"बाग के लिए प्राण नहीं देंगे-प्राण देंगे अपनी प्रतिष्ठा के लिये। हमारे रहते बाग छिन जाय तो हमारे जीवन को धिक्कार है।"

पिता पुत्र में बड़ी देर तक वाद-विवाद होता रहा पर शिवप्रसाद किसी तरह न माना।

सबेरे पौ फटते ही बिन्दाचरण ने शिवप्रसादको पुकारा, शिवप्रसाद लाठी लेकर निकला। उसने देखा कि बिन्दाचरण लाठी लिये खड़ा है। शिवप्रसाद बोला—"आगये भइया ! हमें भरोसा था कि तुम जरूर आओगे।'

"एक आदमी से और कह आये हैं—वह भी आता होगा।"

—"वह कौन है ?'

—"जवाहर अहीर ! हमारा नौकर है।"

—"हाँ वह तो तगड़ा आदमी है।"

—"तीन चार के लिए अकेला काफी है।"

—'भइया तुम्हारे इस ऋण से हम कभी मुक्त न होंगे।' शिवप्रसाद ने आखों में आँसू भर कर कहा।

—"पागल हो ऋण किस बात का ? आओ चलें।"

दोनों बाग की ओर चले। रास्ते में जवाहर भी मिल गया। तीनों व्यक्ति बाग में जा पहुंचे।

सूर्योदय हो रहा था। उसी समय बच्चनसिंह अपने दोनों भाइयों तथा दो अन्य व्यक्तियों सहित जो कुल्हाड़ियाँ लिये थे बाग की ओर आता दिखाई पड़ा।

शिवप्रसाद बोला—"होशियार, आ रहे हैं।"

तीनों व्यक्ति लाठियाँ संभाल कर बच्चन की प्रतीक्षा करने लगे।

शिवप्रसाद बोला—"जब किसी पेड़ को काटना आरम्भ करें तब हमें बोलना चाहिए।"

बिन्दाचरण को भी यह राय पसन्द आई।

इसी समय शिवप्रसाद ने देखा कि उसका पिता आ रहा है। शिव-प्रसाद भृकुटी चढ़ाकर बोला "यह यहाँ क्यों आ रहे हैं ? अब यह

मामला बिगाड़ेंगे।"

—"आने दो।" बिन्दाचरण ने कहा। इसी समय बच्चनसिंह तथा उसके साथी बाग के अन्दर आगये।

बच्चनसिंह ने शिवप्रसाद को देखा, पर कुछ बोला नहीं। उसने इधर उधर घूम कर एक पतला सा आम का पेड़ चुना। जो आदमी कुल्हाड़ियाँ लिए थे उनसे वह बोला—"इस पेड़ को काटो।"

वे दोनों व्यक्ति पेड़ की ओर बढ़े, इसी समय शिवप्रसाद ने ललकार कर कहा "खबरदार! पेड़ को हाथ न लगाना नहीं तो लहास गिर जायगी।" वे दोनों व्यक्ति भयभीत होकर रुक गये। बच्चनसिंह डपट कर बोला "क्यों, रुक क्यों गये, काटते क्यों नहीं?"

शिवप्रसाद बोला—"ठाकुर कुछ दम हो तो तुम अपने हाथ से काटो। इन गरीब आदमियों को क्यों जुझाते हो?"

इसी समय विनायक प्रसाद भी बाग के अन्दर आ गए। उन्होंने बच्चनसिंह से कहा "ठाकुर क्यों उपद्रव करते हो।"

—"उपद्रव करते हैं तुम्हारे यह सपूत। मैं उपद्रव नहीं करता। मैं तो बाग पर कब्जा करने आया हूँ।"

शिवप्रसाद बोल उठा—"करो कब्जा! देखें कैसे कब्जा करते हो।"

बच्चनसिंह विनायक प्रसाद से बोला—"देखो पण्डित अपने सपूत की बातें। अब कौन उपद्रव करता है।"

—"उपद्रव तो ठाकुर तुम्हीं कर रहे हो।"

—"और सुनो। एक तो रुपया न दें और दूसरे हमीं पर उपद्रव करने का दोष।"

इस समय तक गाँव के बहुत से आदमी भी तमाशा देखने आ गये थे। विनायक प्रसाद उन लोगों की ओर देखकर बोलें—"आप लोग ठाकुर को समझावें, नहीं तो आज यहाँ लहासें गिर जाँयगी।"

तमाशाइयों ने कोई उत्तर न दिया केवल खड़े देखते रहे।

बच्चनसिंह बोला "गाँव वालों से क्या कहते हो, अपने लड़के को क्यों नहीं मना करते।"

विनायक प्रसाद बोले-'मैंने तो इसे भी बहुत मना किया कि जाने दो, उनका रुपया है, बाग पर कब्जा करते हैं तो कर लेने दो; पर मेरी तो कोई भी नहीं सुनता, न यह सुनता है न तुम सुनते हो—मैं कहूँ तो क्या कहूँ। मैं तो अहिंसावादी हुँ। मैं तो ये बातें पसन्द ही नहीं करता।'

—"लड़के को तो भेजा फौजदारी करने को और स्वयं अहिंसा-वादी बने फिरते हैं। यह चालबाजी तो देखो।"

इतना सुनकर विनायक प्रसाद कुछ उत्तेजित होकर बोले "ऐसा नीच कर्म मैं कभी नहीं कर सकता ठाकुर! अच्छा तुम्हें पेड़ काटना हो तो काटो।"

इतना कहकर विनायक प्रसाद लपककर पेड़ के पास पहुँच गये और पेड़ से अपनी पीठ लगाकर बोले—"यदि आपकी यही इच्छा है तो आओ काटो। पहले मुझे काटो तब पेड़ को काटने पाओगे।"

यह देखते ही जो आदमी कुल्हाड़ी लिये खड़े थे वह कुल्हाड़ी फेंककर पीछे हट गये। बच्चनसिंह बोले—"क्यों तुम लोग कहां जाते हो।" उनमें से एक बोला—"सुनो ठाकुर! हम फौजदारी से नहीं डरते। पर हम इस बूढ़े ब्राह्मन से नहीं लड़ेंगे। आपको पेड़ काटना हो तो अपने हाथ से काटिये—और जो हमसे कटवाना है तो पहले इन्हें यहाँ से हटा दीजिये।"

बच्चनसिंह विनायकप्रसाद से बोला—"परिडत पेड़ के पास से हट जाओ।"

शिवप्रसाद ने भी कहा "बप्पा तुम पेड़ के पास से हट जाओ-देखें यह कैसे पेड़ काटते हैं।"

विनायकप्रसाद बोले—"मैं लड़ाई तो चाहता नहीं। मैं तो खाली अपने प्राण देना चाहता हूँ। मैं आज इस लड़ाई को बचाने के लिए

अपने प्राण दे दूँगा । शिवप्रसाद बेटा-जाओ तुम घर लौट जाओ !"

शिवप्रसाद बोला—"मैं नहीं जाऊँगा, आज या तो ठाकुर दुनियाँ में रहेंगे या मैं रहूँगा।"

विनायकप्रसाद की आँखें लाल होगईं। उसने कहा—"देख शिवप्रसाद यदि तू मेरे खून से पैदा हुआ है, यदि तू मुझे अपना पिता मानता है तो घर चला जा।"

बिन्दाचरण शिवप्रसाद से बोला "शिवप्रसाद ! अब तुम्हें घर चलना चाहिये।"

शिवप्रसाद—"तुम भी ऐसा कहने लगे।"

—"तुम्हारे पिता ने क्या कहा कुछ सुना कि नहीं सुना ?"

—"हाँ सुना।"

—"तो बस अब लौट चलो। तुम्हारा धर्म यही है कि पिता का कहना मानो। बहुत बड़ी बात कह गये। यह समझ लो।"

शिवप्रसाद ओंठ चबाता हुआ बोला—"अच्छा चलो, पर पेड़ कट गया तो मैं गाँव में नहीं रहूंगा।'

—"कट जाने दो ! पिता से अधिक बाग नहीं है।"

शिवप्रसाद बिन्दाचरण तथा जवाहर अहीर के सहित चला गया। उसके चले जाने पर विनायक प्रसाद पेड़ के पास से हटकर बोले 'ठाकुर अब पेड़ काट लो। तुम्हें जिससे सन्तोष हो जाय वह करो। चाहे एक पेड़ काट लो, चाहे सारा बाग काट लो।"

बच्चनसिंह ने कहा—' हम तो एक ही पेड़ काटेंगे।"

इतना कहकर काटने वालों से वह बोला—"हाँ काटो।"

वे दोनों कुल्हाड़ी लेकर बढ़े। इसी समय गाँव वालों का दल बाग के अन्दर घुस आया और चार छः आदमी ललकार कर बोले "खबरदार, पेड़ को हाथ न लगाना। ठाकुर तुम्हें शरम नहीं आती ! उसने अपने लड़के को हटा दिया, नहीं तुम्हारी मजाल थी जो पेड़ को हाथ लगा

लेते। इसके ऐसे भलमंसी के व्यवहार पर भी तुम पेड़ को काटते हो। डूब मरो चुल्लू भर पानी में।"

बच्चनसिंह बोला—"ऐसे ही आप इन पर बड़े दयावान हैं तो हमारा रुपया क्यों नहीं दिलवा देते।"

सब चिल्ला उठे—"हाँ! हां! रुपया अभी देते हैं चलो। हम अभी देते हैं चलो। हम अभी आपस में चन्दा करके तुम्हारा रुपया दिये देते हैं गांव चलो।"

बच्चनसिंह म्लानमुख होकर सिर झुकाये हुए वहां से चल दिया।

विनायक प्रसाद बोले—"बोलो महात्मा गांधी की जय!"

सबने एक स्वर से कहा—"महात्मा गांधी की जय।"

डाक्टर कश्यप होम्योपेथी के डाक्टर हैं और अपने को एम० बी० एच ! लिखा करते हैं। इनका एक छोटा-सा दवाखाना है जिसमें केवल एक अलमारी है और इस अलमारी में दवा से भरी हुई शीशियों की अपेक्षा पानी भरी हुई शीशियों की संख्या अधिक है। डाक्टरी से इन्हें पचास साठ रुपये मासिक की आय हो जाती है। केवल पति पत्नी होने से इतनी आय में इनका निर्वाह होता रहता है।

इनका साँवला रंग, मोटा तथा नाटा शरीर होने के कारण लोग इन्हें डाक्टर कश्यप न कह कर डाक्टर कच्छप कहा करते हैं। आपमें बुद्धि की भी कमी साधारण से कुछ अधिक ही है।

डाक्टरी के सम्बन्ध में तो कुछ कहा ही नहीं जा सकता, यद्यपि कुछ लोगों का कहना है कि डाक्टर साहब की चिकित्सा से आरोग्य लाभ करनेवाले रोगियों की अपेक्षा मरनेवालों अथवा अधिक रोगाक्रांत होकर भाग खड़े होनेवालों की संख्या अधिक है। परन्तु लौकिक व्यवहार में डाक्टर साहब की बुद्धि प्राय: उनसे असहयोग ही किये रहती

है। उनकी बुद्धि का एक नमूना देखिये !

डाक्टर साहब एक बच्चे की चिकित्सा कर रहे थे। इस बच्चे का जुड़वा भाई भी था। तीन चार दिन तक औषधि करने के पश्चात एक दिन जब बच्चे का पिता बच्चे को लेकर आया तो उसकी दशा देखकर डाक्टर साहब बोले—"इसका बुखार कैसे बढ़ गया ?"

"हम क्या जानें डाक्टर साहब ! कोई बदपरहेजी तो नहीं हुई।"

"बुखार बढ़ने का कोई कारण न होना चाहिये।"

"अब हम क्या बतावें"

डाक्टर साहब ने दवा दी। जब वह व्यक्ति चला गया तो डाक्टर साहब के पास बैठे हुए दो तीन निठल्लों में से, जो केवल मनोरंजन के लिये डाक्टर साहब के पास आ बैठते थे, एक बोला—

"आपने यह देख लिया कि यह वही बच्चा है। इसका भाई भी ऐसा ही है, दोनों का चेहरा एक सा है।"

"इससे क्या मतलब ?" डाक्टर साहब ने कान खड़े करके कहा।

"हमें पता लगा है कि यह हजरत एक ही हिसाब में दोनों बच्चों का इलाज करा रहे हैं। जो अदल बदल कर लाते हैं और दवा ले जाते हैं। आप तो यह समझते हैं कि आप एक ही का इलाज कर रहे हैं परन्तु वास्तव में इलाज हो रहा है दोनों का। और इसमें आप का नुकसान है।"

डाक्टर कच्छप यह सुनते ही आगबबूला हो गये। बोले –"मेरे साथ चालाकी ! अच्छा अब आनें दो।"

संध्या समय जब व्यक्ति पुनः बच्चा लेकर आया तो उससे डाक्टर साहब बोले—

"यह कौन सा बच्चा है ?"

"वही सवेरे वाला और कौन होगा।"

"गलत बात है। तुम हमारे साथ चालाकी करते हो। दोनों बच्चों

को हमारे सामने लाओ तब दवा देंगे।"

"आपको मेरी बात पर विश्वास नहीं?"

"कैसे विश्वास हो? तुम एक ही हिसाब में दोनों का इलाज करा कर हमारा नुकसान करते हो। वैसे तुम्हारे पास देने को न हो तो साफ साफ कहदो, मैं मुफ्त दवा दे दूंगा, लेकिन चालाकी का मैं दुश्मन हूँ।"

"एक ही हिसाब से आपका क्या मतलब है। आप जिसको दवा देते हैं उसके दाम ले लेते हैं तब एक हिसाब कैसे हुआ?"

"क्या? क्या!" डाक्टर साहब माथा सिकोड़ कर बोले।

"मान लीजिये मैं दोनों की चिकित्सा करा रहा हूँ—जैसा आप कहते हैं वैसा ही सही, परन्तु एक हिसाब कैसे हुआ! जिसको जितनी दवा आप देते हैं उसके दाम लें लेते हैं यह एक हिसाब कहाँ रहा?"

दो एक उपस्थित व्यक्तियों ने उस व्यक्ति की बात का समर्थन किया। अब डाक्टर को समझ में आया बोखलाकर बोले—"सबेरे उन लोगों ने कैसे कह दिया खैर।" यह कह कर आप दवा बनाने उठे। उपस्थित लोगों ने समझ लिया कि किसी ने डाक्टर साहब को उल्लू बनाया है।

डाक्टर साहब ऐसे बुद्धिमान हैं।

होली का त्योहार आया। इन लोगों ने सोचा कि इस बार डाक्टर कच्छप को उल्लू बनाना चाहिये—दो-तीन व्यक्ति यह परामर्श करके डाक्टर साहब से बोले—"डाक्टर साहब कल होली है, परसों रंग खेला जायगा। आपने उड़नछू रंग नही बनाया।"

"उसकी एक चीज नहीं मिलती" डाक्टर साहब बोले।

"क्या नहीं मिलती! हमें बताइये।"

",तुम्हें क्यों बतावें, इस बहाने से तरकीब सीखना चाहते हो।"

"उसमें तो कई चीज पड़ती होंगी—जब तक सब न मालूम हों तब

तक एक चीज के मालूम होने से क्या होगा ?"

"हाँ ! यह बात तुमने ठीक कही ।"

"तो हमें एक परचे पर लिख दीजिए । हम ला दें ।"

"मिलेगी नहीं ।"

"आप लिख तो दीजिए ।"

डाक्टर साहब ने परचे पर नाम लिख दिया ।

दूसरे दिन वह व्यक्ति डाक्टर साहब से मिल कर बोला—"बन्द शीशी तो मिलती नहीं, खुली मिलती है ।"

"खुली का क्या विश्वास !"

"इसी मारे हम लाये नहीं । लेकिन एक बात है ।"

"क्या ?"

"एक आदमी रंग बनाकर देने कहता है । जितना कहिये उतना ला दें ।"

"उड़नछू रंग ?"

"हाँ !"

"वह कैसे बनायगा ?"

"जैसे आप बनाते हैं वैसे ही बनाता होगा ।" उसके पास उड़नछू का पूरा मसाला है ।"

"अच्छा !"

"हाँ कहिए तो कुछ बोतलें आपके लिए भी बनवा लाऊं ।"

"हमें क्या करनी हैं ।"

"बेचने के लिए ।"

"दूसरे से खरीदने में पड़ता नहीं पड़ेगा ।"

"पड़ेगा । वह पचास प्रतिशत कमीशन देने कहता है ।"

"अच्छा !"

"जी !"

"तब ठीक है। एक दर्जन बोतलें बनवा लाओ।"

होली जलने के दिन डाक्टर साहब के पास एक-दर्जन बोतलें आ गयीं और चार-पाँच बोतलें उसी समय बिक भी गयीं।

दूसरे दिन जब कि चारों ओर रंग चल रहा था डाक्टर साहब अपने दवाखाने में बैठे थे; परन्तु उनके कपड़ों पर एक बूंद भी रंग रंग न था।

एक व्यक्ति पहुंचा और उसने पूछा—"आप पर रंग नहीं पड़ा—ताज्जुब है।"

डाक्टर साहब मुस्कराये और बोले —"अक्ल से काम करने की जरूरत है।"

"आपने क्या किया ?"

"मैं मुंह अंधेरे ही आगया था ! उस समय रंग नहीं चल रहा था।"

"खैर अब जाइयेगा कैसे।"

"यहां से दो बजे जाऊंगा–दो बजे तक रंग चलना बंद हो जायगा।"

"अच्छा एक बोतल उड़नछू दे दीजिए।"

डाक्टर साहब ने उड़नछू दिया। वह व्यक्ति बोतल की डाट निकालते हुए बोला—"आप कोरे बचे जा रहे हैं तो हम आपके साथ होली खेलेंगे।।

"क्यों, परेशान करोगे ? कपड़े भीग जायंगे, बस इतनी बात है। रंग तो उड़ ही जायगा।"

"आपके कपड़े हम रंगना भी नहीं चाहते। इसीलिए उड़नछू लिया है, नहीं वैसा रंग लाते।"

यह कह कर उसने पूरी बोतल डाक्टर साहब पर उलट दी। ठंडा रंग जो पड़ा तो डाक्टर साहब कुर्सी से उछल पड़े और उं हू हू हूँ करते हुए बोले—"क्या बेहूदा– क्या बेहूदा—ऊ हूँ हूं पन" करते हो ! मुफ्त में

इ ही ही ही कपड़े भिगो दिये।"

डाक्टर साहब जड़ाय गये। दुकान के बाहर पत्थर पर आकर धूप में खड़े हुए।

एक अन्य महोदय बोले—"आज आपको दवाखाना बन्द रखना था।"

"दवाखाना कैसे बन्द रह सकता है ई ई ई ई! दवाखाना कभी नहीं बन्द हो सकता।"

"हां दवाखाने तो सब खुले हुए हैं।";

एक अन्य व्यक्ति बोला।

कुछ देर बाद एक ने कहा–"डाक्टर साहब, यह रंग उड़ा नहीं बल्कि और गहरा होता जाता है।"

'वाह! उडेगा क्यों नहीं। जब उड़नछू बनाया है तब जरूर उड़ेगा।'

"अब तक तो उड़ जाना चाहिए था।',

"मसाला पुराना रहा होगा इससे अभी नहीं उड़ा; लेकिन उड़ जायगा।"

इसी समय एक व्यक्ति जो एक दिन पूर्व शाम को उड़नछू की बोतल ले गया था दौड़ा आया। आते ही उसने डाक्टर साहब को फटकारना प्रारंभ किया–"वाह डाक्टर साहब, अच्छा उड़नछू बनाया!"

"क्या हुआ?"

"हुआ क्या—दौसौ की साड़ी का नाश हो गया। उड़नछू समझकर लड़के ने डाल दिया; परन्तु वह उड़ा नहीं और गहरा हो गया।"

डाक्टर साहब बोले-"ऐं! तो क्या हमारे ऊपर भी नहीं उड़ेगा।"

"अब क्या उड़ेगा डाक्टर साहब! अब तो सूख चला।" दूसरा व्यक्ति बोला।

"यह क्या बात हुई, मसाले में कुछ फरक होगया।"

"आपने कुछ अंट—शंट तो नही डाल दिया।"

"मैंने कब बनाया ?"

"तब ?"

"बना बनाया खरीद लिया एक आदमी मार्फत !"

"खरीदने के बाद परीक्षा नहीं की !"

"परीक्षा करने की क्या आवश्यकता थी ?"

"वाह डाक्टर साहब ! दूसरे की बनाई हुई चीज बिना परीक्षा किए हुए ही खरीद ली। किससे खरीदा ?"

"मुझे नहीं मालूम। एक परिचित ने ला दी।"

उसने डाक्टर साहब को खूब सुनाई। जब वह बक—झककर चला गया तो एक महाशय ने पूछा—"और किसी के हाथ तो नहीं बेचा ?"

"दो-तीन अन्य आदमी भी ले गये हैं।"

"तो भागिये ! वे भी आते ही होंगे।"

डाक्टर साहब ने झटपट दवाखाना बन्द किया और घर की ओर भागे।

डाक्टर साहब डर के मारे उस दिन संध्या को भी दवाखाने नहीं गए।

संध्या समय डाक्टर साहब घर के बाहर आकर मुहल्ले के एक द्वारपर पहुँचे। वहाँ कुछ आदमियों सहित घर का स्वामी मकान के चबूतरे पर बैठा हुआ था। डाक्टर साहब उससे बात करने लगे। वह बोले—"बड़ा खराब जमाना आ गया हैं। लोग बड़ी धोखेबाजी करते हैं। उड़नछू के बहाने पक्का रंग दे दिया। मेरे कपड़े तो खराब हुए ही जो लोग ले गये उनके भी कपड़े खराब हुए।"

"आपको पहले उसकी परीक्षा कर लेनी थी।"

"क्या बतावें—गलती हो गई।"

इधर डाक्टर साहब बात कर रहे थे उधर कुछ लडकों ने डाक्टर

की आधी लटकती हुई लाँग में एक टूटा हुआ कनस्तर बांध दिया। जब कार्य हो चुका तो एक व्यक्ति आकर बोला "डाक्टर साहब आपको एक आदमी पूछता हुआ इधर ही आ रहा है।"

"कोई रोगी। हम दूकान पर नहीं गए इससे यहाँ आया।"

"वह कुछ गुस्से में है। कह रहा था हमारे सब कपड़े नाश हो गए। डाक्टर साहब मिल भर जांय।"

यह सुनते ही डाक्टर साहब बोले-"अरे वह उड़नछू वाला होगा।" यह कह कर आप भागे। जो भागे तो कनस्तर खड़खड़ करता हुआ उनकी दुम के पीछे। लड़कों ने तालियां पीटीं। कनस्तर का खिचाव जो पड़ा तो लाँग भी खुल गयी। डाक्टर साहब लाँग से उलझकर मुंह के बल गिरे। उसी समय एक व्यक्ति चिल्लाकर बोला—"यही है इन्होंने ही रंग दिया था, जाने न पावे।"

यह सुनकर डाक्टर साहब इतनी फुर्ती से उठे कि देखने वाले देखते ही रह गए और डाक्टर गिरते-पड़ते पुनः भागे। उनकी दशा देखकर दो तीन कुत्ते भूकते हुए उनके पीछे लग गए। उनका भागना ऐसा था जैसे कोई पीपा लुढ़कता हुआ जा रहा हो। थोडी दूर पर पुनः गिरे। फिर उठे और फिर भागे। कनस्तर भी खड़खड़ करता हुआ पीछे लगा-साथ ही तालियां बजाते हुए लड़के और भूंकते हुए कुत्ते।

घर के द्वार पर पहुँच कर अन्दर घुसने लगे तो कनस्तर अटक गया। इधर एक आदमी चिल्लाया—"ले पकड़ लेना, अन्दर न जाने पावें।" डाक्टर साहब चिल्लाए-"अरे दौड़ना!" यह वाक्य उन्होंने पत्नी के आवाहन में कहा।

पत्नी आई। "क्या बात है?" उसने पूछा। "बात पीछे पूछना पहिले यह कनस्तर खोलो-जल्दी करो।"

पत्नी ने लाँग से डोर खोल कर अलग की। डाक्टर साहब ने तुरन्त द्वार बन्द कर लिया। हाँफते हुए बोले-"सालों ने कनस्तर बाँध दिया

घुटने अलग फूट गए।"

'तो भागने की क्या जरूरत थी।"

"वह उडनछू रंग वाला आगया। वह पा जाता तो मेरी चटनी बना देता।"

"उडनछू रंग कैसा?"

डाक्टर साहब ने सब हाल बताया।

सुनकर पत्नी बोली-'तुम्हें कभी बुद्धि न आयेगी।"

"वाह आएगी कैसे नहीं। कभी-कभी तो सभी से बेवकूफी हो जाती है!"

पत्नी हँसने लगी'।